चतुर्थ अध्याय

कुसुम अंसल के आलोच्य हिन्दी उपन्यासों का अनुशीलन

1. कुसुम अंसल के आलोच्य उपन्यासों मे चित्रित नारियों की घुटनशीलता
2. कुसुम अंसल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नारियों की स्वावलंबी बनने की प्रवृत्ति
3. कुसुम अंसल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नारियों की महत्वाकांक्षा
4. कुसुम अंसल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नौकरी पेशा नारियों की बेइज्जती
5. कुसुम अंसल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नारियों की टूटनशीलता
6. कुसुम अंसल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नारियों की स्वच्छंदी बनने की प्रवृत्ति
7. कुसुम अंसल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नारियों व्दारा विवाह बंधन को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति
8. कुसुम अंसल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित मानवीय संबंध
9. कुसुम अंसल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित यौन-संबंध
10. कुसुम अंसल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित मानवतावादी दृष्टिकोण

निष्कर्ष

अध्याय : 4

कुसुम अन्सल के आलोच्य हिन्दी उपन्यासों का अनुशीलन

कुसुम अन्सल के तीन आलोच्य उपन्यास नारी मनोविज्ञान और मनस्थिति के एक नये आयाम को रेखांकित करते हैं। इसमें मध्यवर्गीय परिवार में उत्पन्न युवतियों की कहानियाँ हैं जो जिन्दगी में कुछ करना चाहती हैं। मुक्ता, सुरेखा, साधवी आदि आलोच्य उपन्यासों की नायिकाएँ पूरी तरह उन्मुक्त और अंकुश रहित जीवन जीना चाहती हैं। पग-पग पर आनेवाली कठिनाईयाँ और सामाजिक आग्रह उन्हें नयी-नयी कुंठाएँ देते हैं। जितनी ये नारियाँ बचना चाहती हैं उतना ही धँसती चली जाती हैं। इस विशाल जिंदगी में ऐसा एक भी व्यक्ति हम नहीं देख पाते जो उन्हें उनकी कमजोरियों के साथ स्वीकार ले। मुक्ता, सुरेखा, साधवी लड़ती हैं, टूटती हैं, फिर आगे बढ़ती हैं। कुसुम अन्सल की लेखनी ने इन पात्रों का सजीव चित्रण करके नारी जीवन की व्यथा कथा को उजागर किया है। ये नारियाँ जीवन के हर पड़ाव पर समझौता करना चाहती हैं। यौन वर्जनाओं के घेरे को स्वीकारने और नकारने की पीड़ा से ग्रस्त हैं। निम्न-मध्यवर्ग की कुंठा एवं संवेदना को चित्रित करने में जो सिद्धहस्तता कुसुम अन्सल को हासिल है वह समकालीन हिन्दी महिला कथाकारों में विशिष्ट है। मुक्ता की जीवनगाथा जीवंत दस्तावेज है।

1· कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नारियों की घुटनशीलता

कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों के नारी जीवन की घुटनशीलता का गहराई से विचार किया गया है और यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यह घुटनशीलता परिवेशजन्य है।

कुसुम अन्सल के उपन्यासों में नारी पात्रों की घुटनशीलता के दर्शन होते हैं। भारतीय पुरूषप्रधान संस्कृती में नारी को गौण स्थान प्राप्त होने के कारण मजबूरी की बेडियों में अटकी नारी घर-बाहर घुटनशीलता का एहसास कर रही है। महानगरीय परिवेश में यह घुटनशीलता अधिक तीव्र नज़र आती रही है। "उसतक" 1979 में नीना के साथ सागर के दफ्तर में मुक्ता का जाना, मुक्ता और सागर की मुलाकात होना, दोनों में मीठी-मीठी बातें होना, सागर के व्यक्तित्व से मुक्ता का आकर्षित होना, मुक्ता का उसके बारे में सोचते रहना, सागर का मुक्ता के सामने अपनी डायरी निकालना, उस पर मुक्ता द्वारा उसका पूरा नाम, पता, फोन नम्बर लिखना, सागर जैसे बड़े अधिकारी के सामने खुद को लघु समझकर अपने अस्तित्व को तलाश-मुक्ता द्वारा करना इन बातों को सोचते हुए मुक्ता का कहना, "जीवन तो विडम्बनाओं के हाथों में थमा है, जाने क्या परिवर्तन ले ?"[1] मुक्ता खुद को लघु मानती है इससे उसके मन की घुटनशीलता का पता चलता है।

वह मध्यवर्गीय स्त्री की घुटनशीलता से परिचित होने के नाते बच्चों के सामने अक्षय के पास बैठकर बीयर पीना नहीं चाहती।

कुसुम अन्सल के "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में बाबूजी के घर सुरेखा का भरण-पोषण होना, उचित आयु होने के उपरान्त वधु परीक्षा देना. सुरेखा को देखने के लिए बेटे के घर के लोगों का आना, अपने आपको नुमाइश समझकर सुरेखा का बैठना, कुछ पूछे हुए सवालों का जबाब देना, सुरेखा को इस स्थिति में अपने व्यक्तित्व का पोस्टमार्टम हो रहा है ऐसा लगना, मन की शव-परीक्षा हो रही है, ऐसा अनुभव होना, वह सोचती है - "कैसे लोग मेरे भाग्य के नियामक। बेटे के पिता के द्वारा उसकी निंदा होती है। माँ तो बहुत खूबसुरत है। बेटी के जन्म के समय क्या खाया था···बैंगन या बरसाती जामुन ? ही···ही···ही····।"[2] उसे समय-समय पर अपमान के घुँट पीने पड़ना, जीवन की उदासियाँ, टूटते सपने सालीपन आदि बातों को सहना, सुरेखा द्वारा अपने सौंवलेपन को कोसती रहना, बाबूजी द्वारा उसे समझाना, सुरेखा के मन का बोझ हलका होना, छुट्टी के दिनों

में दिल्ली से कानपुर अपने माँ-पापा के घर जाना, सौतेली माँ द्वारा उसकी भर्त्सना करना, भाइयों के साथ बोलने नहीं देना, इससे उसका घुटती जाना और खुद को समझने लगना, सुरेखा का एल·एल·बी·की परीक्षा देने के उपरान्त दिल्ली छोड़कर कानपुर में चले जाना, वहाँ अपना घर होते हुए भी उसे पराये घर के समान महसूस होना, उसके मस्तिष्क में एक बड़ा-सा पहिया घुमता रहना आदि सारी घटनाएँ उसकी घुटनशीलता की परिचायक लगती हैं। बाहर की दुनिया रंगीन और बाहर के सूरज का चमकीला होना, पर उसके भीतर का अँधेरा उसके निजी विचारों को घेरते रहना, जिससे उसके तन में उसकी अंतरात्मा में उथल-पुथल मचाए रहना इससे पता चलता है कि सुरेखा वहाँ इतनी घूटती रहती है कि भीतर-ही-भीतर मर जाना चाहती है।

सुरेखा की सौतेली माँ और इलाहाबाद से कुछ दिन के लिए आयी चाची द्वारा सुरेखा का अपमानित होना, कटु वाणी द्वारा सुरेखा को टोकती रहना, उसकी ओर से बोलने वाला कोई न होना, हर चुभती बात उसके मन में काटों की तरह लगती रहना, उसके पूरे अंतर्मन में कांटों का एक जंगल उठ खड़ा होना इन सभी बातों से सुरेखा को लगता है - "जैसे वह रास्ता भूलकर समय के जंगल में भटक रही थी। एक करूणा की या शायद किसी अवसर की प्रतीक्षा में जो न वह माँग रही थी।"[3] विसंगत और विडम्बनापूर्ण परिस्थितियों में सुरेखा अपने घर से मधुर तक बंधी एक रस्सी पर कुशल नटी की तरह सधे कदमों से चल रही थी। इस शहर में उसकी सहेली मधुर के बिना उसका और कोई नहीं था।

शिव ने जब सुरेखा की कामना की थी, उस समय उसने उसे दूर ढकेल दिया था। मद्रास से लौटने पर शिव फिर उतने ही तटस्थ हो गए थे। वह अब कुछ देते हैं, तो एक रास्ता, पर कितना अकेला है रास्ता, सन्नाटा है, वातावरण में मन को कचोटती-सी फुसफुसाहट है। जाने कैसी भावनायें हैं, जो सुरेखा समझ नहीं पाती। वह जीना चाहती है, पर लगता है कि जीवन के बीच से वह अलग हो गई है। घटनाएँ अपने-आप घट रही है और उस भीड में मैं मात्र दर्शक बनी खड़ी रह गई हूँ। सच को मैं पकड़ती हूँ, पर सच मेरे साथ लुकन छुपी का

खेल खेलता है, दूर निकल जाता है। मैं जिंदगी से कतराकर नहीं चलना चाहती, मैं चाहती हूँ, मुझे भी जिन्दगी अपने माया जाल में उलझा ले, पर जिन्दगी पता नहीं क्यों मुझसे कतराकर निकल जाना चाहती है।" शिव और अवधेश के बीच अटकी सुरेखा दिन-ब-दिन अधिक घुटनशील बनती जाती हैं।

कुसुम अन्सल के "एक और पंचवटी" 1985 में साधवी के रूप में हमें घुटनशीलता के दर्शन होते हैं। यतीन द्वारा साधवी के विश्वास को सहेज नहीं पाना, उसका अपने दफ्तर के कामकाजों में व्यस्त रहना, यतीन का साधवी के प्रति अलगाव और अरूचि का कारण बनना, हमेशा के लिए तटस्थता रखना, जीवन एक प्रश्नचिह्न-सा उन दोनों के बीच बने रहना, दफ्तर जाने से पहले जल्दी वापस लौट आने का वादा यतीन द्वारा न निभाने के कारण साधवी द्वारा घुटनशीलता का अनुभव करना। उसे लगता है - "मेरा छोटा-सा पत्नी का मन इस बात पर कितना झुंझलाता है, मैं ही जानती हूँ। रात को बिस्तरे पर फैल आये अँधेरे के बीच हमारे शरीर जितना भी एक हो पाने का प्रयास करें मन फड़फड़ाता हुआ उस परिवेश से उड़कर कहीं दूर निकल जाता है। रात की भोगी हुई वह दूरी मेरी सुबह पर भी हावी हो जाती है और फिर मेरी दोपहर को भी तपाती है। और फिर मेरी जड़ें रात के उस घुटन भरे पल से ही क्यों जुड़ी रह जाती है।"[4] यहाँ साधवी की पति की अनुपस्थिति में घुटन नज़र आती है।

यतीन का बार-बार दक्षिण भारत के टूर तथा दफ्तर के काम के लिए बाहर जाना, कलकत्ते की फैक्टरी के किसी विशेष काम से विदेश यात्रा पर निकल जाना, लौटने के बाद साधवी के लिए उपहार न लाना, न ही उसका शरीर इतने दिनों के वियोग की कोई गाथा साधवी के शरीर पर लिखता, यतीन की प्रतिक्षा में साधवी का दम घुटते रहना, निरर्थकता बोध का एहसास करते हुए साधवी का कहना, "मैं इस घर में क्या हूँ, उस घर की दीवारों को ओढ लेने के लिए, पहन लेने के लिए ही इस घर में लाई गयी हूँ। यह सब क्या है। उसका या मेरा स्वयं से संघर्ष या मैंने ही अपने आप को भीतर-ही-भीतर दो भागों में विभाजित किया

है, एक मैं स्वयं जो प्रश्न उठाती हूँ।"[5] यतीन के कारण साधवी के मन में एक घुटन बढ़ती जा रही है, जो उसका पीछा नहीं छोडती। दोनों में संघर्ष शुरू होता है। इस स्थिति में साधवी कहती है - "मैं अपने भीतर एक कारा-मुक्त सत्य खोजती चुपचाप खड़ी रह जाती हूँ।"[6] यतीन का पथरीलापन साधवी की घुटन का कारण बन जाता है।

यतीन साधवी के बीच तनावात्मक स्थिति का निर्माण होना, साधवी का अपने मायके चली जाना, जाते समय विक्रमजी के साथ बस्ती में रूकना, आकस्मिक परिस्थितियों से घिरकर यहाँ इस निर्जन स्थल पर आ पहुँचना, साधवी की आत्मा द्वारा इस बंधन मुक्त स्थल पर वस्तु चेतना का अन्वेषण करना आदि बातों से स्पष्ट होता है कि वह इस घुटन को तोड़ना चाहती है और शक्ति पाना चाहती है, "चारों ओर असीम शांति भी जैसे कोई उपवन हो। सहसा मुझे लगा मैं अपने अपूर्व परावर्तित परिवेश को त्यागकर पंचवटी में आ गई हूँ। पंचवटी की तुलना पर मन-ही-मन हँसी आने लगी। मन कितना आगे सोचा जाता है - कितना तर्कहीन, वह न तो राम हैं, न मैं ही सीता जो भी होता है, जीवन में मानवीय क्षमताओं से अलग होता है।"[7] वह सोचती है -

"मेरे जीवन पर एक कर्ज था और उसे उतारने यहाँ चली आई हूँ। तर्क मुझसे छूट रहे थे वातावरण मेरी आत्मा पर मेरे अस्तित्व पर हावी हो रहा था। और एक असीम शांति धुंध के समान मुझमें भर रही थी। पीछे के जीवन की समूची विवशताएँ जिनके बीच घुट-घुट कर मैं हँसी और सुख की परिभाषा तक भूल गई थी जैसे मेरे शरीर से हाथ छुडा रही थी। हलकी मैं भारयुक्त होकर एक अजीब अनुभूति से भर रही थी। सोच रही थी कि शायद आकस्मिक परिस्थितियाँ बिना विशुद्ध अनुभव नहीं हो सकते और मैं इसलिए यहाँ आयी हूँ।"[8] विक्रमजी से संबंध जोड़कर उसने घुटनशीलता को तोड़ने का प्रयत्न किया है। हवाई जहाज दुर्घटना में विक्रम की मृत्यु होने पर साधवी की घुटनशीलता काफी विस्तार पा चुकी है, वह कहती है - "कितना कष्ट सहा होगा। वह मेरे लिए गये थे, मेरा भविष्य निर्धारित करने, मेरे लिए पंचवटी के रूप में एक निश्चित भविष्य का क्रय करने। वह मुझे उपहार देना चाहते थे और मिला क्या ? फिर से अँधेरा घिरने लगा, -

डूबने लगा, नीचे और नीचे किसी गहरे धरातल एक और मैं सशरीर उसमें समाती चली गयी। मैं अपराधिनी हूँ, उनके प्राणों की अपराधिनी मैं ही हूँ।"[9]

संक्षिप्त में घुटनशील वातावरण से शांति पाने की तलाश में साधवी को मिली अशांति यहाँ पाठकों को प्रभावित करती है। यहाँ कुसुमजी की प्रयोगात्मकता ने कमाल का जादू कर दिया है वह साधवी की जिन्दगी को बिखराने की अपेक्षा यतीन के साथ उसे फिर जुड़ाकर साधवी का उद्धार करती है।

कुसुमजी ने "उसतक" की मुक्ता, "अपनी-अपनी यात्रा" की सुरेखा, "एक और पंचवटी" की साधवी इन तीन नारियों की घुटनशीलता विभिन्न परिवेशों में कैसे बढ़ती जाती है, इस पर गहराई से चिंतन किया है। इन तीनों नारियों की घुटन के अनेक पहलुओं को पाठकों के सामने प्रस्तुत करती है। ये तीनों नारियाँ इस घुटन से परे होने के लिए प्रयत्न करती हैं। इन्हीं प्रयत्नों में मुक्ता और सुरेखा टूटकर बिखर जाती हैं। साधवी मात्र टूटकर फिर जीवन से जुड़ जाती है।

2· कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नारियों की स्वावलंबी बनने की प्रवृत्ति

कुसुमजी ने अपने आलोच्य उपन्यासों के नारी पात्रों को स्वावलंबन का पाठ-पढ़ाकर उनमें स्वावलंबी प्रवृत्ति को उभारने का प्रयत्न किया है। "उस तक"1979 की मुक्ता इस स्वावलंबी प्रवृत्ति का अच्छा उदाहरण है।

मुक्ता अपनी देखभाल तथा आर्थिक का बोझ दूसरों के कंधों पर लादना नहीं चाहती, तो स्वयं का बोझ स्वयं ढोना चाहती है। बाबूजी की बीमारी, परिवार की आर्थिक हीनता, माँ द्वारा भर्त्सना आदि बातों से त्रस्त की मुक्ता, कॉलेज में प्रवेश मिलने के बाद होस्टल में रहने का इन्तजाम स्वयं करती है। घर से जाते वक्त बाबूजी की राय लेती हुई कहती है - "अच्छा बाबूजी अब जा रही हूँ। अब और कष्ट नहीं दूंगी आप लोगों को। आशीर्वाद दीजिए कि सफल हो सकूं।"[10] होस्टल में रहकर बी·ए·की परीक्षा देना, अच्छे अंक प्राप्त करना, नौकरी के लिए यत्र-तत्र भटकना, सतपाल निगम प्रा·लि· में नौकरी के लिए दाखिल होना, स्वयं का भरण-

पोषण करना, इसके साथ-साथ बाबूजी की दवाइयों पर खर्च करना, जीवन के पड़ावों पर गुजरते-गुजरते अविवाहित रहने का निश्चय करना आदि बातें यहाँ मुक्ता की स्वावलंबी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालती हैं। वह किसी पुरूष की छाया में पलने की अपेक्षा स्वयं अकेली रहना चाहती है।

कुसुमजी के "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 की सुरेखा भी आत्मनिर्भर बनकर रहना चाहती है। वह स्वयं की जिम्मेदारी स्वयं उठाना चाहती है। अपना बोझ माता-पिता पर छोड़ना नहीं चाहती। मधुर सहेली की सहायता से मशहूर एडव्होकेट शिव की जान-पहचान करना, प्रैक्टिस के लिए पापा से इजाजत लेना, प्रैक्टिस के लिए स्वीकृति देते हुए सुरेखा के पिताजी का कहना - "अब जमाना बदल गया है, हर लड़की को अपने पैरों पर खडा होना चाहिए।" अंतरिक मन से सुरेखा आत्मनिर्भर बनना चाहती है और पापा से कहती है, जब तक मैं पूरी तरह अपने पैरों पर खड़ी नहीं हो जाती, आप मेरी शादी की बात कहीं नहीं चलाएंगे - इट इज वैरी डिस्टर्बिंग - पहले मुझे कुछ बन लेने दीजिए।"[11] यहाँ सुरेखा की स्वावलंबी बनने की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

सुरेखा का दिन-प्रति-दिन शिव के आफिस में प्रैक्टिस करना, पहले महिने के वेतन से भाइयों को खिलौने तथा पापा को कुर्ता पजामा खरीदना, दूसरे महिने में सहेली मधुर और स्वयं के लिए एक ही डिझाइन की साडियाँ खरोदना, मधुर द्वारा सुरेखा की प्रशंसा की जाना। सुरेखा कहती है - "अब मैं खुश हूँ, ऐसा लगता है, अब तक मैं केवल शरीर थी, अब आत्मावान हो गई हूँ। आत्मनिर्भर होना अपने भीतर कितने बड़े विश्वास को जगाना है, कितना बल मिलता है अपने को यह मैंने अब जाना है। अपने आपको देखने की जिम्मेदारी अब मेरे हाथ में आ गई है। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं अब मेरी जिन्दगी को कोई हाथ नहीं लगा पाएगा - मेरा अपना निर्णय ही मेरा जीवन होगा।"[12] हताश होने वाली सुरेखा के मन में दृढ़ आत्मविश्वास निर्माण हो चुका था। अपने पैरों पर खड़े होकर जीवन

में आने वाले विघ्नों के साथ जूझने के लिए तैय्यार हुई थी वह पूर्वरूपेन आत्मनिर्भर बनने लगी थी।

कुसुम अन्सल की नायकाएँ स्वावलंबी बनने की होड़ में भविष्यत की जिंदगी तथा शादी विवाह के बारे में कुछ नहीं सोचती। सुरेखा विपुल अंटी से कहती है, "पहले पूरी तरह कुछ बन तो जाऊं उसके बाद सोच लूंगी।"[13] स्वावलंबन से सुरेखा आत्मनिर्भर बन चुकी है। पिताजी की मृत्यु के बाद शादी के लिए पूछनेवालों से वह कहती है - "अब वह अपना फैसला औरों पर नहीं छोडेगी। सबने अपने फैसले देकर उसके पूरे जीवन को खिलवाड बना दिया था। अब अपने भविष्य के नये रेखाचित्र में वह किसी के निर्णय की अपेक्षा नहीं करेगी।"[14] यहाँ प्रतिकूल स्थिति में सुरेखा की स्वावलंबी बनने की, अपना करीयर बनाने की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

"एक और पंचवटी" 1985 में कुसुम अन्सलजी ने नायिका साधवी के माध्यम से यतीन को स्वावलंबी बनने का पाठ पढ़ाया है। साधवी अपने पति को आत्मनिर्भरता का रास्ता दिखलाती है। यतीन का अपने भाई विक्रमजी के कहने पर चलना, उसको परिवार में इज्जत, मान-मर्यादा का न मिलना, साधवी का दम घुटते रहना, इन सभी घटनाओं से पता चलता है कि वह अपने पति को आत्मनिर्भर बनाना चाहती है। वह कहती है, "नहीं यतीन प्लीज आज सुन ले मुझे इस भीड़ से उबार लो, दिल्ली के बाहर कोई काम देख लो···मैं तुम्हारे साथ हूँ।"[15] विक्रमजी की प्रवृत्ति के कारण साधवी दूर रहना चाहती है। उसकी नियति अशोभनीय तथा निंदनीय है।

यतीन से हटकर साधवी का मायके चले जाना, अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश करना, उसका प्रिन्सिपल साहब से मिलना, अपनी पूरी विवशता, यातना स्पष्ट रूप से उन्हें कहना, नौकरी पर नियुक्त होना। इन सारी घटनाओं के पश्चात वह कहती है - "भाग्य ने साथ दिया कि मेरा काम लग गया। उनको धन्यवाद कहके जब लौटी तो मन पर से बड़ा बोझ उतर गया था। माँ-बाप पर आर्थिक

रूप से निर्भर हो जाने का कष्ट जो मुझे साल रहा था वह दूर हुआ। एक टीस समाज हो गई और आभास होने लगा कि आगे आनेवाले सभी सुख-दुःख मैं सहजता से झेल जाऊंगी।"[16] वह स्वावलंबी बनकर जीवन जीना चाहती है। अपनी चिन्ता करने वाले विक्रम से वह कहती है - "मेरी खातिर चिन्ता न करे, मैंने अपने जीने की राह निर्मित कर ली है।"[17] वह पूर्णरूपेन आत्मनिर्भर बनी थी।

संक्षिप्त में प्रस्तुत उपन्यास की नायिका साथवी ने भी हमें स्वावलंबी प्रवृत्ति के उचित दर्शन करा दिए हैं। कुसुमजी का विचार है कि नारियाँ जब तक स्वावलंबी नहीं बनती तब तक आत्मनिर्भर बन नहीं सकती। कुसुमजी के इसी विचारों का वहन साथवी करती है ऐसा लगता है। एक उच्च परिवार की साथवी परिस्थिति से टूटकर जीवन से समझौता करने के लिए स्वावलंबी बनती है। अपना बोझ आप ढोना चाहती है।

3· कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नारियों की महत्वाकांक्षा

महत्वाकांक्षा मानवी जीवन में प्राण भरती है। कुसुमजी के आलोच्य उपन्यासों में महानगरीय नारियों की महत्वाकांक्षा पर प्रकाश पडता है। आज की आधुनिक नारी पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त करके अपनी महत्वाकांक्षा के बल पर सब कुछ बनना चाहती है।

कुसुमजी के "उसतक" 1979 की मुक्ता अधिक महत्वाकांक्षावादी नायिका है। निम्न-मध्य-वर्ग की मुक्ता का अत्यंतिक महत्वाकांक्षी होने के कारण प्रतिकुल परिस्थिति में शिक्षा-दीक्षा पूर्ण करना, नौकरी की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना, महत्वाकांक्षा के परिणामस्वरूप जीवन के हर पड़ावों पर सफल होना, उर्ध्वगामी बनकर सफलता पर सफलता हासिल करते रहना, बस्तीनुमा माहौल से उठकर फ्लैट संस्कृति में प्रवेश करना, जीवन के हर मोड़ पर सफलता प्राप्त करना, आपत्तियों से जुझते-जुझते आनंद की अनुभूति प्राप्त करना, इस महत्वाकांक्षा के लिए केवल बाबूजी का आशीर्वचन प्राप्त करते रहना आदि घटनाओं से पता चलता है कि मुक्ता की महत्वाकांक्षा

किसी के द्वारा चेतीत नहीं की थी वह स्वयंभू थी। इस स्थिति का वर्णन काफी हुआ। कुसुमजी खिलती है - "पैरों में छाले थे, कठिनाइयों का जंगल सामने था, जिसे वह हँसकर तय कर रही थी, जैसे दूर से महत्वाकांक्षा का सितारा चमककर उसे पास बुला रहा था।"[18] जीवन में आनेवाले हर एक कठिनाइयों के सथ वह जूझना चाहती थी, सोचती है - "अभी मेरी मंजिल आयी नहीं है, मुझे चलना है अभी और चलना है।"[19] मुक्ता की महत्वाकांक्षा उसे आगे-आगे बढ़ने को बाध्य कर रही थी। मुक्ता अपनी स्थिति और गति पर प्रकाश डालती हुई कहती है, "मैं दुर्घटनाओं के बीच से गुजरी मात्र परछाई हूँ। मेरी आत्मा बचपन में माँ के व्यवहार ने कुचली और चरित्र अनिल के क्रूर अट्टहास के पीछे चूर-चूर हो गया। महत्वाकांक्षा का जो आकाश उसे छूना है, उसे छूकर ही रहूँगी। मैं जीऊंगी और हर कठिनाई को रौंदती हुई अच्छी तरह जीऊंगी। क्योंकि मैं "मैं" हूँ।"[20] यहाँ मुक्ता की महत्वाकांक्षा में कुसुम अन्सलजी की महत्वाकांक्षा के दर्शन होते हैं। इसलिए लगता है कि मुक्ता कुसुमजी के विचारों की वाहक है।

कुसुम अन्सल के "अपनी-अपनी यात्रा"1981 की सुरेखा महत्वाकांक्षी नारी है जो अपनी महत्वाकांक्षा के बल पर नये-नये अनुभवों को प्राप्त करती है। उर्ध्वगामी बनकर प्रतिकूल परिस्थिति से ऊपर उठना चाहती है। शिव की सहायता से उसको महत्वाकांक्षा को अधिक बल मिलता है। सुरेखा के प्रति शिव की पूर्ण सहानुभूति है। सुरेखा को देखकर उसे उत्तेजना मिलती है। वह अपनी अर्थहीन जिंदगी में सुरेखा के सान्निध्य में ओयासिस का अनुभव करता है। वह सुरेखा को लेकर मद्रास जाता है। त्रिवेंद्रम में रूककर सुरेखा सागर को देखना चाहती है। इस समय उसकी नयी सहेली मृणालिनी से सुरेखा कहती है - "मैं तो समुद्र को छूना चाहती हूँ, बाहों में भरना चाहती हूँ। समुद्र से दूर रहकर उसकी कल्पना तो मैं बहुत पास से देख पाने की मेरी इच्छा को किसी भी दुनिया का सिपाही रोक नहीं पायेगा, तुम देख लेना।"[21] इसमें सुरेखा की महत्वाकांक्षा के दर्शन होते हैं।

कुसुम अन्सल के "एक और पंचवटी" 1985 में साधवी की महत्वाकांक्षा के चढाव-उतार के पूर्ण आलेख पर चिंतन किया गया है। चित्रकार साधवी कहती

है - "ये एक जीवन है, शायद एक लालसा है, एक प्रयास भर आत्मज्ञान की प्राप्ति के प्रति किया गया।जो मैं यहाँ इस कक्ष में जीती हूँ। जब भी यहाँ होती हूँ, जी रही हूँ, मुझे आभास रहता है, मैं जीवित हूँ, जी रही हूँ, मुझमें स्पन्दन है, श्वास है, मेरे भीतर भी हास्य और कुन्दन जैसे भाव हैं, जो यहाँ अनेक चित्रों में विविधता से उभरें हैं।"[22] साधवी के चित्रों में शैली की विविधता है। उन्होंने अपनेपन को जीवन से तादात्म्य बिठाने के हेतु जैसे भी जिया उसी को किसी न किसी घटना या भावना के सहारे यहाँ चित्रित किया. उसके लिए उसके चित्र आकार और आत्मा का एक श्रुति मधुर सुसंगत तालमेल प्रस्तुत करते हैं। उसके भीतर प्रकृति एक राजनैतिक पागल खाने-सी घुटन भरी न होकर प्रेरणास्त्रोत-सी बही है। "मैंने चाहा है कि मेरे चित्र व्यक्तिपरक विशिष्टता के मूक आवरण से उठकर आत्मपरकता के स्तर को छू ले।"[23] यहाँ साधवी की महत्वाकांक्षा के दर्शन होते हैं।

साधवी का तनावपूर्ण स्थिति में मायके जाना, नौकरी ढूँढना, अपने बच्चों का सम्मानित परिवार की प्रतिष्ठा के अनुसार लालन-पालन करना, उन्हें कोई अभाव न खलता रहे, इस पर सोचते रहना, अपने परिश्रम पर उसे विश्वास है। साधवी कहती है, "मैं उसकी माँ हूँ मेरे दो हाथ हैं, विश्वास है, उसका ठीक से भरण-पोषण करूँगी। आगे चलकर वह कहती है - "मुझमें एक आत्मसम्मोहन-सा जाग उठा है, एक सृजनात्मक शक्ति जैसे मेरी ऊर्जा है और उसी के कारण हो सकता है स्वाभिमान भी मन में जड़ पकड़ गया हो।"[24] अपनी माँ के सामने वह आत्मबल के साथ अपनी महत्वाकांक्षा पेश करती है। नवीन भैय्या के सामने प्रस्तुत उसकी बातें उसकी महत्वाकांक्षा की गवाह हो सकती हैं वह कहती है - "अब मैं पूर्ण हो उठी है, परितृप्ति से भर गयी हूँ। अपना समूचा जीवन इस अपूर्व अनुभूति के सहारे व्यतीत कर लूँगी।"[25] नवीन भैय्या उसे समझाते हुए जीवन की कठिनाइयों एवं भयावहताओं से परिचित करना चाहता है। अपने भविष्यत के बारे में चिन्ता करने वाले अपने देवर से साधवी कहती है - "आपको अपने शरीर की परतों में छुपाकर संसार का सबसे बड़ा सुख अर्जित कर लिया है मैंने। आपके अस्तित्व के

उस नन्हें रूप को जिस दिन अपनी गोदी में मुस्कराता देखूंगी - वह मेरे जीवन का अद्वितीय दिन होगा।"[26] साधवी के इस आत्मविश्वास में उसकी महत्वाकांक्षा के बीज बोये गये हैं। नारी की अस्मिता को जब ठेंस पहुँचती है, तब उसको आत्मसम्मान जागृत होता है और यहीं आत्मसम्मान उसे महत्वाकांक्षा की डगर पर खड़ा करके कर्तृत्वशील नारी बनाने का प्रयत्न करता है। साधवी इसका अच्छा उदाहरण हो सकता है।

संक्षिप्त में कुसुमजी ने अपने आलोच्य उपन्यासों की नारियाँ मुक्ता, सुरेखा, साधवी के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया है कि महत्वाकांक्षिणी नारी भी कठिन परिस्थितियों में भी कैसे प्रशस्त पथ का निर्धारण करती है। महत्वाकांक्षा ही नारी में आत्मसम्मान और चेतना को जागृत करती हैं। महत्वाकांक्षा के बलबुते पर नारी सब कुछ पा सकती है और अपने पूरे परिवेश को बदल सकती हैं। इस पर भी यहाँ कुसुमजी ने चिंतन किया है।

4· कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नौकरी पेशा नारियों की बेइज्जती

आजकल नौकरी पेशा नारी की ओर देखने की दृष्टि में दफ्तरी माहौल में गंदगी देखने को मिलती है। बॉस की इन नारियों की तरफ देखने की दृष्टि साफ नहीं होती, फलस्वरूप इन नारियों की बेइज्जती होती रहती है। कुसुम अन्सल ने अपने आलोच्य उपन्यासों में इस बात की ओर सतर्कता से साथ सोचा है।

कुसुम अन्सल के उपन्यास "उस तक" 1979 में मुक्ता के माध्यम से इस बात पर उन्होंने प्रकाश डाला है - सतपाल बाबू के ऑफिस में नौकरी करनेवाली मुक्ता का सतपाल बाबू की ओर से दैहिक शोषण होता है। उसके निमंत्रण को टालना नौकरी को टालने के बराबर उसे लगता है। उस अन्धकारपूर्ण दफ्तरी माहौल का अपना इतिहास भी तो कम काला नहीं है। दफ्तर में अधिक समय तक सतपाल बाबू द्वारा रोक दिया जाना, मुक्ता का हाथ-हाथ में लेकर चूमना, ऑफिस की अधिकाधिक जिम्मेदारी उस पर सौंप देना, वेतन बढ़ाकर उसे खुश रखना, उसके घर में नयी-

नयी कीमती चीजें खरीदकर देना, उसकी शान-शौकत बढ़ाना, उसकी इज़्जत को लूटते रहना आदि बातों से स्पष्ट होता है कि महानगरों में आज भी अधिकारी वर्ग द्वारा नारी का शोषण होता जा रहा है। अधिकारी वर्ग नाराज हो जाये, तो नौकरी से उन्हें हाथ धोने पड़ते हैं। मुक्ता अपने स्वार्थ के लिए सतपाल बाबू से व्यवसायिकृत संबंध रखती है। "बरसात के बाद चारों ओर हरियाली छा जाती है। फूल खिल जाते हैं, उसके जीवन में भी एक नया फ्लैट आ गया था। नये कपड़े, परफ्यूम फिएट कार और विदेश का ट्रिप।"[27] ये सारा वैभव बेइज्जती के परिणामस्वरूप उसे मिल रहा था। इस बात की चुभन उसे बार-बार सताती थी परंतु वह मजबूर थी, इससे उभरने का मार्ग नहीं पा रही थी।

कुसुमजी ने "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 की नायिका सुरेखा के माध्यम से भी इस पर सोचा है। सुरेखा का दिल्ली में एल॰एल॰बी॰ की परीक्षा देना, परीक्षा के उपरान्त कानपुर जाना, घर में सौतेले माँ के साथ समझौता करना, परीक्षा में पास होना, प्रैक्टिस करने की मनोमन कामना करना, पापा द्वारा प्रैक्टिस करने की इजाजत मिलना, प्रसिद्ध वकील शिव के ऑफिस में प्रैक्टिस शुरू करना, शिव की मंजरी का एक दिन अचानक का आना, सुरेखा का शिव की ज्युनियर एडवोकेट के रूप में काम करना मंजरी को अच्छा नहीं लगना, सुरेखा द्वारा सिन्हा की बेटी के रूप में अपना परिचय मंजरी को करवा देना, मंजरी का इस पर विश्वास न होना। मंजरी का कहना है कि "उनके दो बेटे ही हैं, बस तो क्या यह उनकी कोई ऐसी वैसी औलाद है या गोद ली हुई।"[28] सुरेखा चाहती थी कि मंजरी को श्रद्धा तथा आदर के रंगीन चश्मे से देखे पर ऐसा नहीं हुआ। मंजरी सुरेखा को अपमानित करती हुई कहती है, "देखती हूँ, दफ्तर ही नहीं, पूरे घर भर को तुम अपनी बनाए बैठी हो···।"[29] मंजरी ने सुरेखा के बिलकुल पास आकर उसके चेहरे को अपनी दोनों हथेलियों में उठाकर इस तरह देखा, जैसे कोई मिट्टी की मूर्ति खरीदते समय उसे अरखता-परखता है। सुरेखा हतप्रभ हुई। मंजरी ने कहा, "नोट बॅड, टिपिकल इंडियन, भारतीय हो सोलह आने फिगर भी अच्छा हो सच कहो, शिव के बेडरूम में कितना जाती हो ?"[30] इसके सिवाय और बेइज्जती हो ही क्या

सकती है। सुरेखा को लगा, जैसे उसके दोनों हाथ चेहरे पर से उतरकर गर्दन पर आ गए हैं।

सुरेखा शिव से आकर्षित हो रही है। बातों-ही-बातों में वह शिव की बाहों में आती है और शिव के गर्म होंठ उसकी मुंदी हुई आँखों पर घुमने लगते हैं। यहाँ विडम्बना यह है कि शिव द्वारा उनका दैहिक शोषण और शिव की पत्नी मंजरी द्वारा उसकी बेइज्जती की जाती है, उसे अवमानित किया जाता है। शिव के बेटे अवधेश द्वारा भी उसे बेइज्जत किया जाता है।

संक्षिप्त में इन दो आलोच्य उपन्यासों के माध्यम से कुसुमजी ने यह विशद किया है कि दफ्तरी माहौल में आज नौकरी पेशा नारी को बुरी तरह बेइज्जत किया जाता है। उसका दैहिक शोषण करके उन्हें अपनी वासनाओं का शिकार बनाया जाता है। मुक्ता और सुरेखा अलग-अलग परिवेश में फँस कर अपने जिस्म से खिलवाड कर रही है परंतु यह उनकी मजबूरी है। इस बेइज्जती के खिलाफ वे आवाज नहीं उठा रही है कारण परिस्थिति ने उन्हें ये सारी बातें चुपचाप सहने को बाध्य किया है।

5· कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नारियों की टूटनशीलता

आज महानगरीय परिवेश में नाते-रेश्ते के संबंधों में, पारिवारिक एकता में, टूटनशीलता नज़र आने लगी है। व्यक्ति अर्थकेंद्रित बन जाने के कारण अर्थ के सामने वह सब भूल बैठा है जिससे मानवीय संबंधों में टूटनशीलता के दर्शन होते हैं। कुसुम अन्सलजी के आलोच्य उपन्यासों में इस प्रकार की टूटनशीलता पर गहराई से चिंतन किया गया है।

कुसुम अन्सल के उपन्यास "उसतक" 1979 में मुक्ता की टूटनशीलता पर लेखिका ने चिंतन किया है। माँ की बुराइयों से पीड़ित मुक्ता इस घर में रहना नहीं चाहती। वहाँ के घुटनशील वातावरण से वह दूर रहना चाहती है। माँ के कड़वे व्यवहार के कारण उसकी आत्मा तड़पने लगती है। इस हालत में लेखिका

कहती है - "उसे लग रहा था उसका मूल्य दूसरा है, जो सब ही आंकना चाहते हैं। केवल माँ ने उसे कूडे के ढेर की तरह घर के एक कोने में फेंक रखा है। वह उस ढेर से उबरकर अपनी कीमत जान गयी है। वह कूड़ा-करकट नहीं है। वह कुछ है। वह कुछ बनकर दिखायेगी।"[31]

माता-पिता की मृत्यु के बाद मुक्ता को अकेलापन अखरने लगा। सतपाल बाबू से उसके अवैध संबंध होने के कारण ऑफिस के लोगों से वह टूट गयी थी। केवल औपचारिक बातें ये लोग मुक्ता से करते थे। इन लोगों की व्यंग्योक्तियों से मुक्ता टूटती रही। लोग कहते थे - "चार दिन हुए बाप को मरे, पर बॉस की आशिकी खींच लायी। जरा भी सब्र न हुआ।"[32] सभी घाव मुक्ता अपने पीठ पर पडे कोड़े की तरह सहती रही। उषा-विद्या ये मुक्ता की दोनों बहने मुक्ता की शादी करके उसकी गृहस्थी बसाने की सोचती है परंतु टूटी हुई मुक्ता कहती है - "नहीं नहीं मैं कमजोर नहीं हूँ। किसने कहा टूट गयी हूँ। टूटकर नहीं, जुडकर जीना है मुझे। अलगाव की मेरी जिंदगी व्यर्थ नहीं है - इतनी व्यर्थ नहीं है।"[33] मुक्ता की मानसिकता में मानों बिगाड़ आ रहा है वह अपनी अशांति की स्वयं तलाश करना चाहती है।

कुसुम अन्सल के "अपनी-अपनी यात्रा"1981 में सुरेखा की टूटनशीलता पर भी लेखिका ने प्रकाश डाला है। आर्थिक अभाव के कारण एक नौकर का बेटा प्रशान्त के प्रति सुरेखा का आकर्षण होने पर भी उससे उसका प्रेम संबंध तथा वैवाहिक संबंध स्थापित न होना, सुरेखा का यदु और मिन्ना के साथ प्रशांत के घर जाना, उसके घर की हर चीज वस्तु में सुरेखा को प्रशांत की अनुपस्थिति में भी प्रशांत के दर्शन होना, प्रशांत की अनुपस्थिति में उसका निराश होकर लौट पडना इन बातों से प्रशांत से उसकी टूटनशीलता कितनी पीड़ादायी है, इसका पता चलता है। लेखिका कहती है - "हताश भरी भावनाएँ दूसरी भावनाओं से संतुलित हो जाती है। जीवन का सौन्दर्य उन्हें आड़े हाथ ले लेता है। मन की टूटन एक ओर रह जाती है और जीवन में लुका-छुपी करते सुख के कुछ पल मन में जाने की

इच्छा जगा जाते हैं।"[34]

सुरेखा के पापा की मृत्यु होना, रिश्तेदारों का आ जाना, बाबूजी, माँ, मिन्ना आदि के दुःखी मन पर परदा डालने की कोशिश करना, अपने भीतर का खालीपन सुरेखा को खलने लगता, पापा के पास होने का एहसास उसके लिए ऊर्जा की तरह लगता रहना, इन घटनाओं से पता चलता है कि सुरेखा की टूटनशीलता पिताजी की मौत के पश्चात अधिक बढ़ती है। पिताजी की मृत्यु के बाद वह जीवन से पलायन करना चाहती है। घर-परिवार के लोग सुरेखा के भविष्यत के प्रति कुछ विचार करने लगते हैं। इस अवसर पर सुरेखा सोचती है - "मौत एक शरीर की मौत नहीं होती, कितने ही रिश्तों की मौत होती है। कितने धीमें से कदम रखती आती है, मौत पर कितने बडे धमाके को गुंजा जाती है कि उससे आत्मा भी बहरी होने लगती है। परिवार में कितना कुछ टूटता है मौत के साथ और कितने ही प्रश्न है, जो सिर उठाकर खड़े हो जाते हैं।"[35] यहाँ सुरेखा के पिताजी की मृत्यु के बाद होनेवाली टूटनशील मनस्थिति का चित्रण किया गया है।

कुसुम अन्सल के "एक और पंचवटी" 1985 में साधवी के रूप में टूटनशीलता पर प्रकाश डालने का प्रयत्न लेखिका ने किया है। यतीन-साधवी पति-पत्नी के रूप में तनावपूर्ण जीवन यापन करते हैं। साधवी विक्रम के आकर्षण से बचने के लिए यतीन को संयुक्त परिवार से अलग करना चाहती है, परंतु यतीन टूटना नहीं चाहता। परिणामस्वरूप साधवी अपने देवर विक्रम के प्रभाव में आकर अपने पति यतीन से टूट जाती है। यतीन के पथरीले स्वभाव ने उनकी सारी भाव-भावनाओं पर पानी फेर डाला है। यतीन के सान्निध्य में वह ऊब जाती है। वह चिल्ला-चिल्ला कर कहना चाहती है कि, "मैं पत्थर नहीं हूँ यतीन, मुझे पत्थरों की योनि में मत ढकेलो, मेर पदार्थाकरण हो रहा है-मुझे बचा लो, मै जीना चाहती हूँ। शत-शत वर्ष जीना चाहती हूँ, वह अपना जीवन जिसे जीने का मुझे पूर्ण अधिकार है।"[36] यतीन के पथरीले स्वभाव के कारण उसके सारे सपने हवा हो चुके थे। साधवी धीरे-धीरे टूटने लगी थी। वह सोचती है- "जिसके सच को समाज बर्दाश्त नहीं कर पायेगा और जिसका झूठ उनका अपना व्यक्तित्व। एक वैभवशाली व्यक्ति, परिवार मेरे कारण टूट न

जाए, उनकी प्रगति में मैं अवरोध की चट्टान सी न आड जाऊं। कैसी स्थिति में आ पड़ी थी मैं। साँप छछूंदर सी गति हो गई थी मेरी।"[37] साधवी विचारों की पक्की लगती है। उसकी सोच गहरी है। भाई के कुकर्म से यतीन भी विक्रम से टूट जाता है। यतीन की इस स्थिति का चित्रण लेखिका ने यथार्थ रूप में करते हुए कहा है - "समूची प्रतिमा ही चूर-चूर कर दी। उस भाई को वह भव्य व्यक्तित्व पिघलता जा रहा था - धूमिल होता जा रहा था। वह मुठ्ठियाँ बन्द करना खोलता बुद-बुदाता कमरे में चक्कर काट रहा था।"[38] यहाँ यतीन साधवी, पति-पत्नी की टूटनशीलता पर प्रकाश डालकर फिर इन दोनों को जोड़ने का स्तुत्य काम अन्सलजी ने किया है। यहाँ फिल्मी कथा का प्रभाव लेखिका पर पड़ा हुआ दिखाई देता है।

निष्कर्ष

कुसुम अन्सल ने "उस तक" की मुक्ता, "अपनी-अपनी यात्रा" की सुरेखा "एक और पंचवटी" की साधवी के माध्यम से नारी जीवन की टूटनशीलता पर प्रकाश डाला है। मुक्ता और सुरेखा अपने जीवन को विकसित करने की होड़ में टूटकर बिखर जाती है, तो साधवी टूटकर फिर जुड़ जाती है। नारी टूटनशीलता में विभिन्न पहलुओं के दर्शन कराकर लेखिका ने अपनी प्रयोगधर्मिता का अच्छा परिचय हमें करा दिया है।

6· कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित नारियों की स्वच्छन्दी बनने की प्रवृत्ति

शिक्षा-दीक्षा का प्रचार और प्रसार, नारी के प्रति समाज की देखने की दृष्टि में होने वाला परिवर्तन, समानाधिकारों की प्राप्ति आदि के कारण नारियों में स्वच्छन्दी प्रवृत्तियों के दर्शन होने लगे हैं। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भी इस स्वच्छंदी प्रवृत्ति का एक कारण हो सकता है। लेखिका कुसुम अन्सल ने अपने आलोच्य उपन्यासों में नारियों की स्वच्छन्दी प्रवृत्ति पर भी प्रकाश डाला है। "उसतक" की मुक्ता, "अपनी-अपनी यात्रा" की सुरेखा, "एक और पंचवटी" की साधवी के रूप में इसी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालने का सफल प्रयत्न कुसुमजी ने किया है।

कुसुम अन्सल के "उस तक" 1979 की मुक्ता परिवार को त्यागकर अपना नया घर बसाती है। किसी के सहारे तथा आश्रय से वह जीना नहीं चाहती। प्रति माह आनेवाले वेतन से अपना गुजारा करती है। दिल्ली से कलकत्ता में उसकी पोस्टिंग होती है। नौकरी करते-करते नाटक में काम करना उसे अच्छा लगता है। बम्बई में नाटक खेले जाने के बाद उसकी और भी प्रशंसा की जाती है। अक्षय की बेटी किन्नी का भरण-पोषण करना, उसकी इच्छा के अनुसार खाना बनवाना, नये-नये डिझाइन के कपड़े सिलाना, एक साथ मौसी माँ बनने का प्रयत्न करना, माँग बिना सिंदूर भरे धर्म पत्नी के समान अक्षय की पत्नी बिना बने किन्नी की देखभाल करना, अक्षय को गृहस्थी जीवन का आनंद प्राप्त कराके देना, सागर और सुखेन्दु के विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा देना, अपना स्वच्छंदी और अविवाहित जीवन जीने की चाह रखना वह अधिक पसन्द करती है।

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका मुक्ता द्वारा अविवाहित रहने का किया गया निश्चय उसकी स्वच्छंदी प्रवृत्ति का गवाह तो जरूर लगता है फिर भी उसकी मानसिकता पर अधिक प्रकाश डालता है।

कुसुम अन्सल ने "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में सुरेखा की स्वच्छंदी प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। सुरेखा का कानपुर में रहने को जी नहीं लगता। फिर भी बेटी होने के नाते माँ को छोड़कर कहीं बाहर जाना समाज को अच्छा नहीं लगता। सुरेखा की शादी की बातचीत शुरू होने पर सुरेखा सोचती है - "अपने पैरों पर खड़ी हो जाए प्रैक्टिस करे और अपने जीवन में किसी सार्थकता को खोज ले।"[39] यहाँ उसकी स्वावलंबन से निर्मित स्वच्छंदिता नज़र आती है।

सुरेखा की सहेली मधुर अपना जीवन स्वच्छंद रूप में जीना अधिक पसन्द करती है। दोस्तों के साथ कैन्टिन में जाती है तथा फिल्म भी देखती है। उनके साथ मिठी-मिठी बातें करती है। उन्हें अपनी उंगलियों के इशारों पर नचाती हैं। सुरेखा के द्वारा उसे समझाने पर मधुर हँसती रहती है और कहती - "जन्म बार-बार नहीं होता। जन्म बरबाद करने के लिए भी नहीं होता। जब तक जिओ अच्छी तरह जिओ, उसका एक पल भरपूर जिओ। मुझे सब अच्छे लगते हैं। मैं सबसे मित्रता

कर लेती हूँ। मैं आखिर क्या हूँ ? मुझे दीया ही समझ लो। हर दीये को तेल चाहिए जलने के लिए। पर तेल कहाँ मिलेगा ? प्रेम से, स्नेह से ही तो जीवन बत्ती जलती है। मैं सुख बटोर रही हूँ, प्रेम जोड़ रही हूँ, क्योंकि उसके बिना मैं बिलकुल भी चल नहीं सकूंगी।"[40] मधुर मानती है कि जिस्म की एक अपनी आवश्यकता है, पूरी हो जाने पर फिर कुछ नहीं होता। सब कुछ वैसा ही रहता है - "जिन्दगी शायद "एडवेंचर" है। एक रहस्योद्‌घाटन है। हर पल नया रहस्य सामने आता है, उसे खोज लो, फिर और एक नये के लिए चल पड़ो बस। मैं अपनी कार में बैठी हूँ। पेट्रोल खत्म होने पर रूकती हूँ। पेट्रोल पाकर मेरी कार फिर तेजी से चलती है। मैं रूकती हूँ पर जुडती नहीं। किसी भी रूकावट को अपना पड़ाव या स्टेशन नहीं बनाती। जिन्दगी को यात्रा ही समझें तो अच्छा होता है - उलझन नहीं होती। सफर अच्छा कटे, बस सुविधाएँ जुटाते रहो।"[41]

मधुर अपने जीवन को एक दर्शन मानती , बिलकुल साफ, पारदर्शी, इसलिए चाहती हूँ कि जितनी बन पडे उतनी खुशी बटोर ले। वह कहती है - "मैं अधूरे जागरण में विश्वास नहीं करती। जीना है, तो भरपूर जिओ, कि एक बार जिन्दगी से शिकायत न रहे, कि जिआ नहीं, जिन्दगी ने तुम्हें कुछ दिया नहीं।"[42]

शिव का एकलौता बेटा अवधेश कि जो विदेश में पढ़ाई करता था। अब कानपुर में आया है, शिव की ज्युनियर एडवोकेट सुरेखा से परिचय हुआ, वह उसके सौन्दर्य पर लट्टू हो जाता है सुरेखा भी उसके साथ आंतरिक हृदय से बात करती लेकिन प्रेम नहीं। वह उसे समझाती है कि मैं तुमसे बड़ी हूँ, मुझे इंटरेस्ट नहीं है, मुझ पर असर नहीं होनेवाला है। अवधेश कहता है, "मेरी जिन्दगी का उसूल है जो चीज पसन्द है, जरूर हासिल कर लो। आई डोंट केयर - कि तुम बड़ी हो मुझे तो बस इतना पता है कि तुम मुझे अच्छी लगती हो।"[43] सुरेखा समझाने की कोशिश करती लेकिन वह मानता ही नहीं।

संक्षेप में यहाँ सुरेखा, मधुर और शिव का बेटा अवधेश के रूप में स्वच्छंदता पर प्रकाश डालकर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि आज के युवक-युवितयाँ

उपभोक्तावादिता पर अधिक बल देते जा रहे हैं। उपभोग में सुख पाते हैं। आज की उपभोक्तावादी महानगरीय संस्कृति पर लेखिका ने जाने-अनजाने व्यंग्य करते हुए यह बताने का प्रयत्न किया है कि उपभोग के साथ-साथ मनुष्य को कुछ बनना भी चाहिए। अपने अस्तित्व को सुस्थिर बनाना भी चाहिए। केवल स्वच्छंदी बनकर जीवन रूपी सागर में गुमराह बनना लेखिका को योग्य नहीं लगता। इसलिए सुरेखा के माध्यम से लेखिका स्वयं मधुर और अवधेश को मार्गदर्शन करना चाहती है।

अन्सल के "एक और पंचवटी" 1985 में साधवी और विक्रम के माध्यम से स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। साधवी संयुक्त परिवार का नियंत्रण दूर करना चाहती है। पति यतीन से समझाने की चेष्टा करती हुई वह कहती है , "तुम पर लगे ये नियंत्रण मेरे जीवन की कुंठाएँ बन गये हैं। आओ चलो इनसे दूर निकल भागें, कहीं ऐसे स्थान पर जा रहे जहाँ हम दोनों ही हो, न व्यस्तताएँ हों, न नियम, न और कोई।"[44] आज की शिक्षित पत्नियाँ स्वच्छंदी बनकर दाम्पत्य जीवन बिताना चाहती है। इसका पता यहाँ लगता है। साधवी अपने पति यतीन को विक्रम की छाया में पलने की अपेक्षा अपने मनमुताबिक बनकर जीने की सलाह देती हुई कहती है - "चलो हम कहीं और चलें दिल्ली से दूर छोटे किसी शहर में, अपना अलग संसार बसायें जहाँ हम दोनों हो···न व्यस्तताएँ हो न उलझने।"[45] लेकिन यतीन उसकी इस स्वच्छंदी प्रवृत्ति से मेल नहीं खाता है। साधवी की स्वच्छंदिता उसे उचित नहीं लगती है। यतीन से अलग होकर साधवी अनेक पड़ावों को पार करती-करती अंत में पश्चातापदग्ध बनकर सारी हकीकत यतीन से कहती है - "शायद तुम नहीं समझ पाओगे क्योंकि तुम नहीं जानते प्रेम क्या होता है और प्रेम वह मानवीय अवस्था है, जिसकी पूर्णता तक पहुँचने के लिए कोई भी पथ की बाधा, रुकावट नहीं बनती। चाहे, वह अपनी शादी का बंधन क्यों न हो और प्रेम को भावनात्मक स्तर पर पूर्ण रूप से पा लेने के बाद जो सुख अनुभव होता है वह अनुपम है, अपूर्व है, अनुभवातीत।"[46]

साधवी प्रेम बंधनों में स्वच्छंदी बर्ताव करके नाते-रिश्ते की दीवारों को तोड़ती है। साधवी के इस बर्ताव में पाश्चात्य संस्कृति के दर्शन होते हैं।

निष्कर्ष

कुसुमजी ने यहाँ मुक्ता, सुरेखा और साधवी की स्वच्छंदी प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला है। मुक्ता की और सुरेखा की स्वच्छंदी प्रवृत्ति समाजव्यवस्था की देन लगती है, तो साधवी की स्वच्छंदी प्रवृत्ति पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण लगती है। इसी प्रवृत्ति की शिकार बनकर साधवी ने भारतीय नारी संस्कृति के उच्च-मूल्यों की प्रताड़ना की है और पवित्र भारतीय संस्कृति के देवर-भाभी के रिश्ते पर एक प्रश्नचिन्ह लगाया है।

7· कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में नारियों द्वारा विवाह बंधन को अस्वीकार करने की प्रवृत्ति।

आज महानगरों में रहनेवाली उच्च वर्ग की प्रतिनिधि नारियाँ विवाह बंधन में अटकना नहीं चाहती। स्वच्छंदी और मुक्त जीवन का भोग लेने के लिए वे केवल दोस्ती चाहती है, दोस्ती को विवाह बंधन में जकड़ना नहीं चाहती। विवाह के कारण अपने करियर में बाधा आती है, ऐसी उनकी धारणा होती है। ग्रहस्थी के बोझ को ढोने की अपेक्षा ग्रहस्थी से दूर रहकर फक्कड जीवन का मजा चखना इन नारियों की धारणा बन चुकी है। कुसुम अन्सल ने अपने आलोच्य उपन्यासों के माध्यम से इस बात पर भी गौर से सोचा है। कभी-कभी कच्ची उम्र में जबरी होने पर कई युवतियाँ आजीवन स्त्री-पुरूष संबंधों की हिकारत करती हुई अविवाहित रहने का निर्णय करती हैं। इस पर भी अन्सलजी ने मुक्ता के माध्यम से सोचा है।

कुसुम अन्सल के "उसतक" 1979 में मुक्ता का कच्ची उम्र में अनिल की वासना का शिकार होना, सतपाल बाबू द्वारा मुक्ता का दैहिक शोषण होना आदि घटनाओं से मुक्ता के मन में पुरूष वर्ग के प्रति हेटी निर्माण हो चुकी है। परिणाम स्वरूप सागर तथा सुखेन्दु द्वारा रखे गये विवाह प्रस्ताव को मुक्ता ठुकरा देती है। अक्षय भी उससे आकर्षित होता है, परंतु वह अविवाहित रहकर इनके साथ पत्नी जैसी दोस्ती निभाना चाहती है। विवाह बंधन में अटकना नहीं चाहती। मुक्ता के इस निर्णय के पीछे बचपन में उस पर हुई जबरी का कारण हो सकता है।

कुसुम अन्सल के उपन्यास "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में सुरेखा के अविवाहित रहने की कारणमीमांसा पर प्रकाश डाला गया है। विवाह बंधन एक सामाजिक बंधन है। इस बंधन को पुरूष वर्ग तथा स्त्री वर्ग ने मानना अनिवार्य है। सुरेखा के मन में विवाह जीवन के प्रति विरक्ति निर्माण हो जाती है, वह विवाह की ओर एक उपेक्षित दृष्टि से देखने लगती है क्योंकि उसने नजदीक से पापा-मम्मी की, शिव-मंजरी की तथा मिन्ना-उदेश की अभिशप्त गृहस्थी देखी है। मिन्ना का शोषण ससुराल वाले लोगों के द्वारा होना, उसके बांह पर बड़े काले-काले जलाए हुए निशान देखना, कीमती चीजों की मौंगे पेश करना आदि के कारण वह गृहस्थी जीवन बताना नहीं चाहती। सहेली मधुर उसे अपना जीवन साथी जोड़ने की सलाह देती हुई अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई कहती है - "हाँ विवाह के बंधन को सुरेखा भी नहीं स्वीकारेगी, कभी नहीं। जितने अपमान ऊपर से गुजर रहे है, उनके घाव जितनी क्षति कर गए, उसे ही भरते-भरते वह यहाँ तक आ गई है। अब यह नया घाव अपने ऊपर नहीं ओढेगी।"[47]

शिव का लड़का अवधेश सुरेखा पर मर मिटने लगा, लेकिन सुरेखा उसके प्रेम में बद्ध होना पसन्द नहीं करती। मधुर उसे कहती है - सुरेखा तेरी विवाह की उम्र अब हाथ से छूटने लगी है, अब शादी कर ले। सुरेखा स्पष्ट रूप से अपना मंतव्य व्यक्त करती है - "शादी का नाम मत ले मधुर। इस शब्द से मुझे बहुत घबराहट होती है। शादी के कितने ही रूप देखे हैं मैंने। पहले अपने पापा का, वह कैसे मम्मी के हाथों बेवकूफ बनते रहे। फिर शिव का, वह और मंजरी चुम्बक के दो विपरीत छोरों की तरह जी रहे हैं। और अब मिन्ना को देख रही हूँ। आजकल के जमाने के पढ़े-लिखे आधुनिक घरों में जहाँ समझदारी की अपेक्षा की जाती है वहाँ अव्वल दर्जे के लालची लोगों से पाला पड़ता है।"[48] विवाह की बात आते ही सुरेखा के सामने मिन्ना का कोमल चेहरा उदास बना हुआ आँखों में उतरने लगता है। दूसरों के दाम्पत्य जीवन के तनावों को देखकर सुरेखा अविवाहित रहने का निर्णय लेती है।

कुसुम अन्सल के "एक और पंचवटी" 1985 में विवाह बंधन का अस्वीकार करनेवाली एक विवाहित नारी साधवी के माध्यम से एक नया आयाम प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

यतीन का पथरीलापन और साधवी का रसीलापन ये दो भिन्न छोर उनके दाम्पत्य जीवन की घुटन को बढ़ाते रहे हैं। साधवी विक्रम के प्रभाव से बचने के लिए और सफल वैवाहिक जीवन की उपलब्धि के लिए यतीन को संयुक्त परिवार से दूर रहने की सलाह देती है परंतु यतीन नहीं मानता। परिणामस्वरूप यतीन का सान्निध्य साधवी को प्रसन्न नहीं कर सका। वह अपने देवर विक्रम के प्रेम के शिकंजे में अटक गयी। उससे दो जुडवाँ बच्चों को पैदा कर सकी। यहाँ पति की लापरवाही और पथरीलापन विवाह बंधन को तोड़ने के लिए कारण बन चुका है। इस पर लेखिका ने प्रकाश डाला है। साधवी विवाहिता होकर भी अपने पति के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करने के बंधन को अस्वीकार करती है।

यहाँ विवाह के पश्चात विवाह बंधन को अस्वीकार करने वाली नारी को लेखिका ने फिर अपने पूर्व पथ पर लाकर खड़ा करके बिगड़ी हुई बात को सुधारने का प्रयत्न किया है। लेखिका की प्रयोगधर्मिता के यहाँ अच्छे दर्शन होते हैं।

8· कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित मानवीय संबंध

भारत में मानवी संबंधों की लम्बी परम्परा है। भारत में मानवीय संबंधों की आधारभूमि परिवार है। परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो विवाह, अभिग्रहण के बंधनों से एक घर के रूप में संगठित होते हैं। उस समूह में लोग पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहन के रूप में अपनी-अपनी सामाजिक कार्यभूमिका निभाते और एक सामान्य संस्कृति का निर्माण करते हैं। अनेक परिवारों से मिलकर समूह या वर्ग बनते हैं और इन्हीं से कबीले, देश और सम्पूर्ण संसार का मानवीय समाज अपना अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करता है।

समाज व्यवस्था में परिवर्तन की प्रक्रिया का कारण है - औद्योगीकरण। औद्योगीकरण की आपाधापी में जनता काम पाने के लिए शहरों की ओर भागने

लगी, जिससे महानगरों का विकास हुआ। वहाँ जीवन अधिक व्यस्त और त्रस्त रहा। व्यक्ति अपार भीड़ में मानो खो गया। अपरिचय के सैलाब में व्यक्ति डूब गया। मानवीय संबंधों में ठंडापन आया। घर परिवार और मित्रों के रहते हुए भी एक प्रकार के अकेलेपन की उसे अनुभूति सताने लगी। मन मस्तिष्क को शांति प्रदान करने में प्रशांतक गोलियाँ भी असमर्थ बन पड़ी। महानगरों का "ग्लैमर" अंदर से खोखला निकला। पारिवारिक संबंध टूट गये। सन 1960 के बाद पारिवारिक संबंधों को नये आयाम मिले। मानसिकता में बदलाव की स्थितियों का निर्माण हुआ। बदलते पारिवारिक संबंधों के कारण संयुक्त परिवार टूटने लगे। नर-नारी संबंधों में करवट बदली। विवाह पवित्र बंधन नहीं रहा। विवाह बंधन की अवहेलना करके विवाहोपरान्त भी स्त्री-पुरूष संबंध जोड़े जाने लगे। दाम्पत्य संबंधों में दरारे पैदा हुई। परम्पराओं में टूटनशीलता आने लगी। अर्थकेन्द्रित रिश्ते स्थापित होने लगे। घर-बाहर के रिश्ते बेमान हुए। "व्यक्ति की विवशता यह रही कि इतने संबंधों के बीच भी वह अलगाव महसूस करने लगा। वह न तो किसी का बन सका न किसी को अपना बना सका। व्यक्ति संबंधों का विघटन बड़े पैमाने पर हुआ। साथ ही उसके मन में एक प्रकार का रूप समाया हुआ नज़र आने लगा।"[49]

कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित मानवीय संबंध इसी धरोधर पर खड़े होकर घर और बाहर गड्डमड्ड होते हुए लक्षित होते हैं। अन्सल ने दाम्पत्य संबंध, नर-नारी संबंध, पारिवारिक टूटनशील संबंधों की ओर यहाँ चिन्तन किया है। "पत्नी पति को देवता समझती है और उसके आदेश को अपना धर्म। नवविवाहिता वधू कुटुम्ब में अत्यधिक सम्मान प्राप्त करती है। वह श्वसुर, सास, ननद और देवर की सम्राज्ञी होती है।"[50]

1· **पति-पत्नी संबंध**

कुसुम अन्सल के "उसतक" 1979 उपन्यास में मुक्ता के माता-पिता के माध्यम से पति-पत्नी संबंधों के तनावों को चित्रित किया है। मुक्ता की माँ द्वारा उसके बाबूजी की समय-समय पर भर्त्सना करना, मुक्ता के पिताजी को परिवार

में एक पति के रूप में सम्मान न मिलना, पिताजी का अपेंडिक्स का ऑपरेशन होने पर उन्हें अपमानित करते हुए माँ का कहना - "कैसे पडे हो ? उठो, बातचीत करो।"[51] नाते-रिश्ते के लोगों के आगमन पर पति के प्रति सेवाभावी प्रवृत्ति का दिखावा करना, सखी मंडली की महिलाओं का आने पर तो उन्हें हाथ नचाकर पूरा किस्सा सुनाते हुए कहना, "यातनाओं का पहाड़ टूटने पर उन्होंने ही भगवान कृष्ण की तरह एक उंगली पर पूरा का पूरा कष्ट सहेज लिया था।"[52]

इन सभी बातों को नजरांदाज करते हुए मुक्ता के माता-पिताजी के बीच के तनावपूर्ण पति-पत्नी संबंध स्पष्ट होते हैं। "उस तक" में कुसुम अन्सल ने सतपाल बाबू और उनकी पत्नी के भी संबंधों पर प्रकाश डाला है। सतपाल बाबू का जीवन सुखी नहीं है। उनकी पत्नी जर्मन है। साल में छह महिने फ्रेंकफर्ट में रहती है। इससे सतपाल बाबू के और उन्के पत्नी के संबंधों पर केवल संकेत देकर पाठकों को इस पर सोचने को बाध्य किया है।

कुसुम अन्सल के "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में सुरेखा की सौतेली माँ और पिताजी के दाम्पत्य भाव के संबंध रहे हैं। लेकिन सुरेखा की भर्त्सना तथा निंदा सौतेली माँ ने अधिक की है। प्रस्तुत उपन्यास में शिव और उनकी पत्नी मंजरी के संबंधों पर भी प्रकाश डाला है।शिव की पत्नीमंजरी पाश्चात्य सभ्यता में डूबी हुई है। वह सुरेखा और शिव के संबंधों पर शब्द लेती है और सुरेखा को भली-बुरी सुनाती है। अपने पति शिव पर उसे विश्वास नहीं है। इससे उनके तनावपूर्ण दाम्पत्य जीवन पर सोचने को पाठकों को लेखिका ने बाध्य किया है।

2· <u>सास बहू के संबंध</u>

अन्सल के "उस तक" 1979 उपन्यास में मुक्ता की माँ अपनी सास के साथ कैसा बर्ताव करती है, उसका सुन्दर वर्णन किया है। जब तक सास जिंदा थी तब तक उसके साथ समझौता नहीं किया। सास की मृत्यु होना, विरह की खायी में गिरने का मुक्ता की माँ का दिखावटी रूप, ये सारी घटनाएँ सास-बहू के तनावपूर्ण संबंधों पर प्रकाश डालती हैं।

कुसुम अन्सल के "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में मिन्ना का दहेज के कारण सास द्वारा शोषण किया जाना, मिन्ना का अपमान ग्लानि में जीवन बिताना, वर्ष-प्रति-वर्ष आंतरिक घुटन, टूटन के रूप में जीवन जीना। सास द्वारा उसे बार-बार ताने मारना, उसकी निंदा करना, उसकी माँ द्वारा दी गई साडी को वापस लौटाना ये सारी बातें मिन्ना और मिन्ना की सास के बीच के संबंधों की निर्देशक लगती हैं। "एक और पंचवटी" 1985 में साधवी और सास के संयुक्त परिवार के संबंध आत्मीयता के रहे हैं। सास द्वारा उसे अपमानित नहीं होना पड़ा। अन्सल ने आलोच्य उपन्यासों में सास-बहू संबंधों को हल करते हुए सामाजिक जीवन का पर्दाफाश किया है। सिर्फ सास द्वारा ही बहू का शोषण होता है ऐसी बात नहीं है यह स्पष्ट करते हुए आधुनिक काल की युवती सांस को अपनी माँ के समान नहीं मानती है, न कि उसकी श्रद्धाभाव से सेवा करती हे, इस पर भी प्रकाश डाला है। सास अच्छी भी होती हैं इस पर साधवी की सास के उदाहरण द्वारा चिंतन किया है।

3· माता-पिता का सन्तान से संबंध

माता-पिता अपनी संतान का प्रेमपूर्वक लालन-पालन करते हैं। उनके जीवन की महज यहीं कामना होती है कि उनके बच्चे अपने-अपने क्षेत्र में भली प्रकार प्रगति करे, सम्पन्न बनें तथा देश के अच्छे नागरिक बनें। अपनी संतान के भविष्य हेतु माता-पिता सहर्ष कठिन से कठिन तपस्या से गुजरते हैं, कष्ट उठाते हैं और तपिश में भी सुखी होते हैं, यह देखकर कि उनकी सन्तान उन्नति की ओर अग्रसर है। इसके अतिरिक्त व्यवसायिक दृष्टि को महत्व देने वाला पिता अपने पुत्र में भी व्यवसायोपयोगी गुण देखना चाहता है। परम्परागत भावधारा से प्रभावित माता-पिता अपनी संतानों को रूढियों एवं अंधविश्वासों को अपनाने के लिए बाध्य नहीं करते। आधुनिक विचारों से प्रभावित माता-पिता संतान को आधुनिक जीवन शैली के गुणों से युक्त देखना चाहते हैं। माता-पिता द्वारा दी गई शिक्षा का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। बदलते हुए जीवनमूल्य तथा नवीन वैज्ञानिक प्रणाली

से प्रभावित संतानें परम्परागत पराश्रयता का विरोध करने लगी हैं। इसके लिए वे माता-पिता के बंधन से मुक्त होने के लिए उद्यत हैं। आधुनिक परिवेश में प्रायः दो प्रकार की संताने दिखाई देती हैं। एक वर्ग वह है जो पुरातन आदर्शों में विश्वास करता है और जिसके जीवन का ध्येय माता-पिता की सेवा करना है। वह प्रत्येक कठिन परिस्थिति में भी अपने चरित्र को निर्मल और निष्ठावान बनाये रखने का प्रयास करता है। दूसरा वर्ग उन संतानों का है जो पाश्चात्य सभ्यता तथा ज्ञान-विज्ञान से प्रभावित है। यह वर्ग संबंधों और प्राचीन आदर्शों को नहीं मानता। इनके लिए अपना स्वयं का सुख सबसे अहम होता है और माता-पिता के सुख-दुःख की इन्हें कोई चिन्ता नहीं होती। इस पर भी कुसुमजी ने सोचा है।

अ· <u>पिता-बेटी के संबंध</u> : "उस तक" में हम मुक्ता तथा बाबूजी के संबंध इन तथ्यों पर कैसे बैठते हैं, यह देखेंगे - मुक्ता का जीवन अनेक रूकावटों से युक्त था। सातवीं कक्षा में उसे अच्छे अंक प्राप्त होना, बाबूजी का उत्साहित होना, माँ द्वारा प्रशंसा की जाना, उसके माता-पिता का आत्मविश्वास दृढ़ होना, निश्चित रूप से मुक्ता कामियाबी के उच्चतम शिखर तक पहुँच जायेगी ऐसा उन्हें लगना, उनके हृदय में वात्सल्य भाव अधिक मात्रा में उमडना आदि के साथ यहाँ पिता-बेटी के संबंधों में स्नेहीलता के दर्शन होते हैं।

कुसुम अन्सल के "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में सुरेखा और उसके पिताजी के संबंध वात्सल्ययुक्त रहे हैं।

ब· <u>माँ-बेटी के संबंध</u> : "उस तक" में माँ बेटी के संबंध तनावपूर्वक थे। अभद्र नक्षत्र पर पैदा होने वाली मुक्ता का अपमान माँ द्वारा अधिक मात्रा में किया जाता है। जब बाबूजी मुक्ता को उसकी माँ की मृत्यु हुई है, इसकी खबर देते हैं। मुक्ता विरह व्यक्त नहीं करती। उसे अतीत के क्षणों की याद आती है कि माँ ने उसके साथ कैसा बर्ताव किया था। माँ की मृत्यु की वार्ता सुनकर भी गल्ती में नहीं जाती। उसे टूटते हुए जीवन की ढहती हुई दीवारों से कोई दिलचस्पी नहीं थी। "उस माँ को क्या रोये जो जीते जी उसे कांटों का वरदान दिए रही थी। चले जाने दो उसे। मुझे उसके मर जाने से कुछ नहीं देना है। बिल्कुल पत्थर

हो गयी थी मुक्ता।"[53] भावनाओं की कोमलता को वह ठुकरा गयी थी। वह कुछ नहीं है, उसका कोई नहीं है। ऐसा उसे लग रहा था।

क· **माँ-बेटी, माँ-बेटा संबंध** : कुसुम अन्सल के उपन्यास "अपनी-अपनी एक पत्र में एक माँ के हृदय के उद्‌गार है जो आज के महानगरीय परिवेश में किसी भी माँ के हो सकते है, उस बेटे के प्रति जो बिना विवाह किये एक विजातीय लड़की के साथ रहता है, माता-पिता को आर्थिक सहायता तो क्या, उसे पूछता तक भी नहीं है। बेटी विवाह के बाद ऐसे सास-ससुर के शिकंजे में फस गई है जो बेहद लालची है और उसे दुःख देते है - "एक बेटी पास तो है, पर बहुत दूस है। दूसरी दूर है पर मन पास होने पर भी दूरी निभाती है। बेटा ईसाई लड़की घर में डाले है, न जाने शादी की है या वैसे ही रहता है। यहाँ कितने ही घरों में यदु की शादी की बात चलाई थी, पर वह नाराज होकर चला गया। मिन्ना की शादी में नाममात्र आया था, उसे हमारे सुख-दुख से कोई मतलब नहीं, मिन्ना के सुख-दुःख से कोई मतलब नहीं और दूसरी तरफ वेद बाबू का बेटा प्रशान्त है, अपने माँ-बाप के लिए खूब अच्छा नया मकान बनवाकर यहाँ के आऊट हाऊस से निकाल कर ले गया है। जो भी कमाता है माँ-बाप को देना है, घर पर लगाता है। शादी नहीं करता, कहता है पहले ठीक से रहने लग जाये तब देखा जायेगा।"[54]

सुरेखा सौतेली संतान होने के कारण माँ उसका भरण-पोषण नहीं करती। बुआ ने उसे पाला तथा पोसा, पढ़ाया। इतना ही नहीं तो छुट्टी के दिन सुरेखा कानपुर आती तो अपनी सौतेली माँ, छोटे भाई-बहन से मिलने नहीं देती। उसकी नफरत अपमान समय-समय करती है।

3· **बाप-बेटे के संबंध**

कुसुम अन्सल के "उस तक" 1979 में सतपाल बाबू और उसके पोलियों के मरीज बेटे के संबंधों पर भी अन्सलजी ने संकेत दिये हैं। सतपाल का बेटा पोलियों

का मरीज होने के नाते बैसाखियों के सहारे अपना जीवन बीता रहा है और विशाल घर में बंद-सा पड़ा है। न पिता की उसमें दिलचस्पी है और न उसे पिताजी में। यहाँ एक लूले-लंगडे बेटे के प्रति पिताजी की बेवफाई दिखाई है।

"अपनी अपनी यात्रा" 1981 में अन्सल ने वेद बाबू और उसके बेटे प्रकाश के बीच के आत्मीय संबंधों पर प्रकाश डाला हैं। प्रकाश अपने माँ-बाप के लिए नया मकान बँधवाता है। अपनी कमाई माँ-बाप को देता है। वह शादी करने की अपेक्षा अपने कर्तव्य को निभाना चाहता है।

अन्सलजी ने यहाँ बाप-बेटे के संबंधों के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला हैं।

4· बहन तथा सहेली के बीच के संबंध

अन्सल के "उस तक" 1979 में मुक्ता से बड़ी दो बहने उषा-विद्या हैं। शादी के उपरान्त दोनों गृहस्थी जीवन बिताती हैं। उन्हें दुःख है कि मुक्ता की शादी की उम्र हाथ से छुटने के बाद भी मुक्ता की शादी नहीं हुई है उसके लिए कहीं बातें करती हैं। लेकिन असफल हो जाती है।

"अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में मधुर-सुरेखा के बीच सहेली के रूप में प्रेम के संबंधों के दर्शन दिखाई देते हैं। मधुर अपना जीवन यापन कैसी करती है तथा समाज कैसा है, समाज के लोग कैसे हैं, आदि की पूरी जानकारी वह सुरेखा से देती है। सुरेखा मिन्ना के लिए कानून के रास्ते ढूँढती रहती है मगर उसे बचा नहीं पाती है। यहाँ मुक्ता के अपनी दोनों बहनों के साथ वाले संबंध और सुरेखा के अपनी सहेली मिन्ना के साथ वाले संबंधों तथा सुरेखा के मधुर नामक सहेली के साथ वाले संबंधों पर प्रकाश डाला गया हैं।

निष्कर्ष

अन्सल ने अपने आलोच्य उपन्यासों में मानवी संबंधों के बीच पति-पत्नी के संबंध, सास-बहू के संबंध, माता-पिता के साथ संतान के संबंध, माँ-बेटी के

संबंध, पिता-बेटी के संबंध, माँ-बेटे के संबंध, बाप-बेटे के संबंध, बहन और सहेली के साथ वाले संबंध आदि विविध संबंधों का जिक्र पेश करके अधिकतर ये संबंध स्वार्थ के बलबुते पर खड़े हैं, यह दिखाया है। आज के युग में सात्विक संबंध अपवाद मात्र रह चुके हैं। प्रशांत और उसके पिता वेदबाबु के बेटा-बाप संबंध तथा सुरेखा-मिन्ना के सहेली के बीच वाले सात्वीक संबंधों के दर्शन करा देते हैं।

9· <u>कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित यौन-संबंध</u>

आज महानगरों में यौन-संबंधों की स्थितियों में आमूल-चूल परिवर्तन लक्षित होने लगा है। विवाहपूर्व यौन-संबंध, विवाहोपरान्त यौन-संबंध, विकृत यौन-संबंध आदि यौन-संबंधों के विविध आयामों ने आज महानगरीय जनजीवन में अपने पाँव फैलाये हैं और महानगरीय यांत्रिक तनावों से क्षणिक मात्र राहत पाने का प्रयत्न किया गया है। साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास साहित्य में स्त्री-पुरूष संबंध अनेक स्तरों पर विविध आयामों के साथ नज़र आ रहे हैं। सुनंत कौर के मतानुसार "यौन विषय की संभावनाएँ आज के बदलते हुए जीवन के संदर्भ में पहले से कई गुना बढ़ गई है और इस भाव को लेकर उठने वाले द्वन्द्व और अन्तर्द्वन्द्व पहले से कई सूक्ष्म और गहरे हो गये हैं।"[55] साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में इस विषय ने अपनी जड़े अधिक मजबूत बनायी है। कुसुम अन्सल के उपन्यासों में इस तथ्य के दर्शन होते हैं।

कुसुम अन्सल ने "उस तक" 1979 में अनिल द्वारा कच्ची उम्र में मुक्ता पर जबरदस्ती से स्थापित यौन-संबंधों में विकृत यौनेच्छा के दर्शन कराये है। मुक्ता सागर के यौन-संबंध ऊपर से आत्मीय लगते हैं परंतु मुक्ता के अतीत के इतिहास की गाथा को सुनते ही सागर उससे हट जाता है। इससे स्वार्थी प्रेम तथा यौन-संबंध की प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है। मुक्ता-सुखेन्दु के यौन संबंधों में आत्मीयता है परंतु सुखेन्दु के विवाह प्रस्ताव को प्रताड़ित करके मुक्ता विवाह बंधन में पड़ना नहीं चाहती और वह दोस्ती के रूप में संबंध स्थापित करके पाश्चात्य यौन-संबंधों की याद दिलाती है। मुक्ता-अक्षय के यौन-संबंध परिस्थिति की उपज लगते हैं

कारण अक्षय की पत्नी का असाध्य बीमारी से अस्पताल में पड़े रहना और पत्नी की अनुपस्थिति में मुक्ता के साथ यौन-संबंध रखना इसमें अक्षय की मजबूरी के दर्शन होते हैं परंतु पत्नी के अच्छे होने के तार को प्राप्त करते ही वह मुक्ता से दूर होता है, इसमें स्वार्थ देखने को मिलता है। मुक्ता जैसी भारतीय नारी केवल पुरूषों के भोग से पीड़ित नजर आती है। उसने अपने शरीर को मानो प्लैट फॉर्म बनाया है जिस पर से कोई भी यात्री आये कुछ क्षण रूके और चला जाए। इसमें मुक्ता की करूणा के दर्शन होते हैं।

"अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में कुसुमजी ने सुरेखा-प्रशांत, सुरेखा-शिव, सुरेखा-अवधेश के यौन-संबंध दिखाकर यौन-संबंधों के विविध पहलुओं से हमें परिचित कराया है। सुरेखा-प्रशांत के यौन संबंधों में आर्थिक दुर्बलता की दीवार खड़ी करके प्रशांत के साथ संबंध स्थापित करने की सुरेखा की तीव्र भावनाओं को प्रतिबंध लगाने का प्रयत्न किया है। दोनों के आकर्षण में आत्मीयता के दर्शन होते हैं। सुरेखा-शिव के यौन-संबंधों में आसक्ति, भोगवासना के बदले ममत्व एवं स्नेहशीलता के, आदर तथा श्रद्धा के दर्शन अधिक होते हैं। शिव-मंजरी से नाराज होकर सुरेखा के साथ यौन-संबंध स्थापित करना चाहता है। सुरेखा-अवधेश के यौन-संबंधों का जिक्र पेश करते हुए आधुनिका आवारा युवकों की तीव्र भोगवासना को वाणी देने का काम कुसुमजी ने किया है। अवधेश भोग के सामने उम्र की फिक्र न करके सुरेखा को भोगना चाहता है परंतु सुरेखा उसे समझाने का प्रयत्न करती है।

अन्सल के "एक और पंचवटी" 1985 में संयुक्त परिवार के मुखिया विक्रम के यौन-संबंध अपनी भाभी साधवी के साथ दिखाकर भारतीय संस्कृति के देवर-भाभी के पवित्र रिश्ते पर एक प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया है। यतीन से ऊबकर साधवी विक्रम के मोहजाल में फँस जाती है और नाते-रिश्तों की दीवारों को ताड़कर अवैध यौन-संबंध स्थापित करती है।

निष्कर्ष

कुसुम अन्सलजी ने आलोच्य उपन्यासों में परिवर्तित यौन-संबंधों एवं यौन-धारणाओं का चित्रण उचित ढंग से किया है। यहाँ जोर-जबरदस्ती पूर्ण यौन-संबंध,

कुँवारी नारी और विवाहित प्रौढ पुरूष यौन-संबंध, आवारा भोगी युवकों के यौन संबंध दफ्तर के बॉस द्वारा स्थापित यौन संबंध आदि का चित्रण करके यौन-संबंधों के विविध आयाम मुक्ता, सुरेखा, साधवी के माध्यम के पेश किये हैं। पुरूष वर्ग की स्वार्थी और भोगी प्रवृत्ति से उबकर मुक्ता अविवाहित रहने का निर्णय लेती है। अपनी बहन मिन्ना का दहेज के कारण हुई हिकारत को देखकर सुरेखा आजीवन विवाह न करने का निश्चय कर लेती है, तो साधवी पथरीले स्वभाव के पात से दूर होकर विक्रम के साथ "एक और पंचवटी" का निर्माण करके फिर पश्चातापदग्ध होकर अपने खेमें पर वापस लौटती है। "सुबह का भूला शाम को वापस लौटता है" की उक्ति को वह सार्थ बनाती है। सातवें-आठवें दशक में यौन-चेतना प्रबल होती हुई देखने को मिलती है, इसके भी दर्शन यहाँ होते है। साधवी जैसी आधुनिक उच्चवर्गीय नारी अपने पति से ऊबकर अपने अकेलेपन को तोड़ने के लिए अपने देवर विक्रम से यौन-संबंध स्थापित करती है। शिव अपनी पत्नी के होते हुए भी सुरेखा से संबंध स्थापित करता है। आज समाज में यौन-संबंधों को अधिक बल प्राप्त हो चुका है। मधुर की स्वच्छंदता ने तो विवाह संस्था पर प्रश्नचिन्ह खडे किये है। मनोविश्लेषण के प्रभाव के कारण स्त्री-पुरूष आकर्षण को स्वाभाविक माना जाने लगा है। इस तथ्य पर भी कुसुमजी ने अपने आलोच्य उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

10· कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में चित्रित मानवतावादी दृष्टिकोण

आज मानवतावादी दृष्टिकोण परिवर्तित समाज जीवन के साथ-साथ परिवर्तित हो चुका है। महानगरों में अर्थकेंद्रित रिश्तों के परिणामस्वरूप मानवतावादी दृष्टिकोण ध्वस्त होने लगा है। कुसुम अन्सल ने मात्र मानवतावादी दृष्टिकोण को अपने आलोच्य उपन्यासों के माध्यम से जिन्दा रखने का प्रयत्न किया है।

अन्सल के आलोच्य उपन्यासों में मानवतावादी विचारों के दर्शन होते है। कुसुम अन्सल के "उस तक" 1979 में अविवाहित मुक्ता द्वारा अक्षय तथा किन्नी को गृहस्थी जीवन का प्रेम देने की घटना मानवतावादी दृष्टिकोण से ओतप्रोत लगती है। "मुक्ता ही आँखों से झरना

उन्मुक्त प्रेम जो किसी के लिए अनायास ही मन में उग आया था, अक्षय को कहीं भीतर तक अभिशप्त कर गया। उसे लगा भारतीय नारी के वास्तविक स्नेह प्रेम का स्वरूप उसने मुक्ता की आँखों में देखा है। मुक्ता का प्रेम कुछ भी प्रतिदान नहीं माँगता। मुक्ता का स्नेह मीठी जलधार की तरह बहकर इस तरह बट जाता है जिसे किन्हीं तप्त कन्दराओं में कलकल करती शीतल जलधार हो। उस निश्छल उन्मुक्त प्रेम के आगे अक्षय नतमस्तक हुए बिना न रह सका। जाने-अनजाने वह अपने आपको उस जलधार में डुबो आया।"[56]

मुक्ता का अपनी जिंदगी के प्रति देखने का दृष्टिकोण ही मानवतावादी है। दूसरों के लिए त्याग और सेवा उसके जीवन का सब कुछ है। अपने अतीत के जीवन की तहकीकात का अगले जीवन में अपने जीवनसाथी पर कोई असर न होने पाये, इसलिए वह अविवाहित रहने का निर्णय लेती है। इस निर्णय में भी मानवतावादी दृष्टिकोण उभर उठता है। सुखेन्दु की पत्नी नहीं बल्कि मित्र बनकर रहने में भी मुक्ता के मानवतावाद के दर्शन होते हैं।

अन्सल के "अपनी-अपनी यात्रा" 1981 में भी मानवतावाद के दर्शन होते हैं। सुरेखा की माँ की मृत्यु होने के उपरान्त मिन्ना की माँ और बाबूजी द्वारा मिन्ना का लालन-पालन करना, यदु और मिन्ना के भाँति सुरेखा को उनके द्वारा अपनी सगी बेटी समझना, सुरेखा को माता-पिता जैसे प्रेम देना ये सारी घटनाएँ मानवतावादी दृष्टिकोण की गवाह हैं, जिनमें उदारता के दर्शन होते हैं।

सुरेखा जानती है कि बाबूजी की नियमित आय में माँ बहुत कुछ नहीं बना पाती थी। सुरेखा के लिए भाई से कोई खर्च भी नहीं लेती थी। जब भी सुरेखा के पापा कुछ देना चाहते हैं "तब वह गुस्से से कहती - "अगर मेरी एक और बेटी होती तो क्या तुमसे खर्चा माँगने जाती मैं ? सुरेखा तो मेरी ही बेटी है।"[57] हाँ, इतना मानती हूँ कि तुम बड़े आदमी हो, अपनी बेटी कहकर अच्छा घरवार ढूँढ दोगे। इसलिए अपनी बेटी कहने का तुम्हारा यह अधिकार बना रहने दिया, नहीं तो क्या सुरेखा पर तुम्हें हाथ रखने देती मैं ? फिर भगवान ने तुम्हें

और बेटी भी नहीं दी, इसीसे सुरेखा को अपनी बेटी कह लेने देती हूँ। नहीं तो मेरे जीते-जी इसे कोई अपना नहीं कह सकता था चाहे वह मेरा सगा भाई ही क्यों न होता।" इसमें मानवतावाद के दर्शन होते हैं। कभी सुरेखा के कानपुर में रहकर आगे पढ़ने का आग्रह करते तो फिर माँ बिगड़ जाती - "क्या कहते हो भैय्या ? दुनिया क्या कहेगी ? सदा तो छोकरी को पाला, पढ़ाया अब जब ब्याह लायक हुई तो पढ़ाई का बहाना बनाकर बाप के घर फेर दी। न ऐसा तो अब नहीं होगा।"[58] अपनी बेटी कहकर घर वर ढूंढ दो। शादी तो मैं करूंगी अपने दरवाजे पर। पैसा भी सारा मेरा ही रहेगा। कितनी आत्मीयता दिखाई देती है, सुरेखा के प्रति बुआजी की।

कुसुमजी के "एक और पंचवटी" 1985 में पति-पत्नी के बीच समझौता करके यतीन में मानवतावादी दृष्टिकोण जगाने का प्रयत्न किया है। वह अपनी पत्नी साधवी का अतीत भूलकर दो बच्चों सहित स्वीकार करता है जो बच्चे उसके खुद के न रहकर उसके भाई के रहे। वह कहता है - "मनुष्य क्या हो सकता है शायद वहीं जो अपने को बनाता है, अपनी इस निर्मिती के लिए तुम उत्तरदायी हो और तुम्हारा उत्तरदायित्व भाईजी ने एक दिन मुझे सौंपा था, मैं उसे निभाऊंगा साधवी। सुनो साधवी यतीन प्रेम की परिभाषा जान गया है।"[59]

एक ओर साधवी यतीन से तलाक लेनी की बात कर रही थी, तो यतीन उसे समझा रहा था। माँ जी (सास) अस्पताल में आयी थी। विक्रम की मृत्यु के कारण बहुत जर्जर हो चुकी थी। विरह व्यक्त कर रही थी। यतीन ने एक बच्चे को उठाकर माँ की गोद में दिया। माँ जी का रोना थम गया और बोली मेरा विक्रम बेमौत मारा गया, उसके साथ पूरे घर पर मूर्दनी छा गयी। "पर वह मरा नहीं है बेटी····इस घर से इतना मोह भी यही जन्म ले लिया है उसने। दोनों बच्चे उसी पर पड़े हैं भगवान की अजब लीला है। अब इन्हीं में विक्रम को देखूंगी साधवी चल यतीन इनको घर ले चल विक्रम के बिना घर खाने को आता है।"[60] साधवी सास को समझा रही थी कि चिंता मत करो माँ। ये तुम्हारे पास रहेंगे।

भाईजी की अमानत की तरह तुम्हारे पास। जैसे चाहे इनसे जी लगाना। अब तुम ही इन्हें पालना जैसे भाईजी (विक्रम) को पाला था।

साधवी के पति यतीन और सास भी इनके बच्चों में विक्रम की छाया देखकर उसे स्वीकार करते हैं। अंत में साधवी इन दोनों बच्चों का नाम "लव-कुश" रखती है। यहाँ मानवतावाद और प्राचीनता में आधुनिकता के दर्शन होते हैं।

संक्षेप में प्रस्तुत आलोच्य उपन्यासों में कुसुमजी ने मुक्ता, सुरेखा की बुआ, बुआ के पति, यतीन और यतीन की माँ आदि के माध्यम से मानवतावादी दृष्टिकोण पर चिंतन किया है। आज महानगरों में अर्थकेंद्रित नाते-रिश्ते की होड़ में मानवतवादी दृष्टिकोण लड़खड़ाने लगा है परंतु लेखिका ने अपने उपन्यासों में इस मानवतावादी दृष्टिकोण को जिन्दा बनाया है। मुक्ता द्वारा बचपन से होने वाली अनहोनी के कारण आजीवन अविवाहित रहने का निर्णय लेना, सुरेखा द्वारा दहेज पीड़ित मिन्ना की स्थिति से विव्हल होकर विवाह न करने का निर्णय लेना, सुरेखा की बुआ और उनके पति द्वारा सुरेखा को अपनी सगी बेटी समझकर उसका लालन-पालन करना उसकी शादी भी अपने खर्चे से करने का निर्णय करना, यतीन द्वारा पथभ्रष्ट पत्नी साधवी को अनैतिक संबंधों से निर्मित दो बेटों के सहित स्वीकारना, इन सभी बातों में मानवतावादी दृष्टिकोन उभर आया है। आज भी समाज में उदारमतवादी, मानवताप्रेमी लोगों के दर्शन होते हैं। इसे यहाँ स्पष्ट करने का स्तुत्य प्रयत्न लेखिका ने किया है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध में कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों का अनुशीलन करते समय हमने उनके इन आलोच्य उपन्यासों में चित्रित आधुनिक महानगरीय नारियों की घुटनशीलता, महानगरीय नारियों की स्वावलंबी बनने की प्रवृत्ति, उनकी महत्वाकांक्षा, नौकरीपेशा नारी को होनेवाली बेइज्जती, इन नारियों की टूटनशीलता, इनकी स्वच्छंदी प्रवृत्ति, विवाह बंधन को अस्वीकार करने की नयी नीति, परिवर्तन

की बुनियाद पर अस्थिर बनते जा रहे, मानवीय संबंध, स्वार्थ के बलबुते पर खड़े होकर बिखरते हुए नर-नारी यौन-संबंध, परितर्वनशील मानव जीवन में भी मानवतावादी दृष्टिकोण आदि को नजरांदाज करके यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि आज महानगरीय जनजीवन ऊपर से चमकीला होने पर भी इसके अंदर शिक्षित नारियों की घुटनशीलता के दर्शन होते हैं। पुरूष प्रधान भारतीय संस्कृति में नारी परावलंबी एवं आत्मनिर्भर न होने के कारण घर-बाहर उसका शोषण हो रहा है, जिसकी सीमा-रेखाओं को तोड़ने की अतीव इच्छाशक्ति मन में पैदा होने पर भी, वह ऐसा कर नहीं सकती, जिससे निराश होकर वह घुटन का शिकार बनती है। कुसुमजी के उपन्यास "उस तक" की मुक्ता, "अपनी अपनी यात्रा" की सुरेखा, एक और पंचवटी" की साधवी ऐसी ही नारियाँ हैं, जो उच्चविद्याविभूषित होकर भी अभिशप्त बनकर घुटन का शिकार बनती हैं।

स्वावलंबन के बल पर अतीव महत्वाकांक्षा के सहारे ये नारियाँ इस भयंकर घुटन को तोड़ने का प्रयत्न करती हैं परंतु प्रयत्न करते-करते बिखर जाती हैं, टूट जाती हैं। अपनी महत्वाकांक्षा को फलद्रुप करने के लिए, स्वावलंबी बनकर स्व-अस्तित्व की तलाश के लिए निकल पड़ी आज की महानगरीय नारी नौकरी पेशा में अपने बॉस के हाथों में बुरी तरह फँस जाती है और अपने जिस्म का सौदा कर बैठती है। "उस तक" उपन्यास की मुक्ता "अपनी-अपनी यात्रा" की सुरेखा ऐसी ही नारियाँ हैं जो अस्तित्व की तलाश में अपनी महत्वाकांक्षा को ध्वस्तकर देती है और बिखर जाती हैं।

आज की महानगरीय नारी अपने घर-परिवार तथा रिश्तेदारों से भी टूटकर अकेला जीवन चाहती है। अपने करियर को बनाने की धून में वह परिवार से दूर रहना चाहती है। स्वच्छंदी जीवन जी कर जीवन का मजा चखना चाहती है। विवाह-संस्था को वह इन्कार करके केवल आवश्यकता पूर्ति के लिए पुरूषों के साथ मित्रता का संबंध रखना चाहती है। "अपनी-अपनी यात्रा" की मधुर एक ऐसी ही नारी है जो मस्ती भरा जीवन यापन करना चाहती है। विवाह को अस्वीकार करती है।

"उस तक" की मुक्ता तथा "अपनी अपनी यात्रा" की सुरेखा और "एक और पंचवटी" की साधवी की स्वच्छंदिता परिस्थिति और समाज व्यवस्था की देन लगती है। ये तीनों आधुनिक और उच्च-विद्याविभूषित नारियाँ विचारी हैं, उनके निर्णय सोच समझदारी के गवाह लगते हैं। मुक्ता और सुरेखा विवाह बंधन को अस्वीकार करती हैं, तो साधवी अपने पति के नीरस जीवन से ऊबकर अपनी ऊबकाई को मिटाने के लिए विवाह बंधन के दायरे को तोड़कर अपने देवर के साथ विवाहबाहय यौन-संबंध स्थापित करती है। इन नारियों के इन निर्णयों के लिए लेखिका ने समाज व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराया है।

आज महानगरों में स्थित मानवीय संबंध स्वार्थ के बलबुते पर दावांदौल हो रहे हैं। इन संबंधों में केवल स्वार्थ नजर आता है। मुक्ता तथा उसके माता-पिता, सुरेखा तथा उसके सगे संबंधी, साधवी तथा उनके संयुक्त परिवार के सभी सदस्यों के आपसी संबंध देखने पर इस तथ्य पर प्रकाश पड़े बगैर नहीं रहता। अर्थ और काम का भूखा आज का इन्सान ढुलमूल मानवीय संबंध स्थापित करता है। जिसमें कोई आत्मीयता नहीं रहती। महानगरों के यौन-संबंधों की भी यही स्थिति है। ये नर-नारी केवल व्यावसायिक तौर पर यौन-संबंध स्थापित करते हैं। कुसुम अन्सल ने यहाँ पुरूष को अधिक दोषी ठहराया है। सतपाल बाबू, विक्रम, शिव, अवधेश ऐसे ही पुरूष हैं, जो व्यावसायिक यौन-संबंधों के गवाह लगते हैं।

कुसुमजी ने इस बदलावपूर्ण दुनिया में, शहरों में रहने वाले लोग आज भी परम्परागत उदार मानवतावादी दृष्टिकोण रख सकते हैं, इस पर मुक्ता, सुरेखा की बुआ और साधवी का पति यतीन के माध्यम से प्रकाश डाला है। मुक्ता का किन्नी के साथ, यतीन और उसकी माँ का पथभ्रष्ट साधवी के साथ मानवतावादी दृष्टिकोण उभर उठता है।

कुसुम अन्सल के आलोच्य उपन्यासों का अनुशीलन करते समय यह स्पष्ट होता है कि बेटी का पिताजी के प्रति प्रेम अधिक दिखाया है। "उस तक" की मुक्ता भी अपने पिताजी से और सुरेखा भी अपने पिताजी से अतीव प्रेम करती

है। कुसुमजी के आलोच्य उपन्यासों से यह भी विशद होता है कि इनकी नायिकाएँ सौतेली माताओं से अधिक पीड़ित रहती हैं। "उस तक" की मुक्ता और "अपनी-अपनी यात्रा" की सुरेखा से इस तथ्य पर प्रकाश पडता है। कुसुमजी ने अपने आलोच्य उपन्यासों में अपनी नायिकाओं को टूटनशीलता का शिकार तो बनाया है, फिर भी उनका पलायन न दिखाकर उन्हें समाज जीवन से जोड़ने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। "एक और पंचवटी" की साधवी इसका अच्छा उदाहरण है। मुक्ता और साधवी भी टूटकर बिखर तो जाती है परंतु जिंदगी से पलायन नहीं करती। आनेवाली हर अच्छी-बुरी बातों का मुकाबला करती है। अन्सल के नारी पात्र प्रतिकुल परिस्थिति से निराश होकर खुदकुशी नहीं करते हैं बल्कि प्रतिकुल परिस्थिति में नारी-पात्र स्वावलंबी, आत्मनिर्भर, स्वतंत्र विचारों के वाहक बनकर प्रतिकुलता में अनुकूलता के सर्जक बनते हैं। ये नारी पात्र परिस्थितियों से टकराकर बिगड़ी बातों को फिर सँवार लेते हैं। कुसुमजी की नायिकाओं का स्वावलंबन की ओर अधिक झुकाव दिखाई देता है। वे अपने घुटन के कटघरे को काटने के लिए वे स्वावलंबन को विचारों देता है। वे अपने घुटन के कटघरे को काटने के लिए वे स्वावलंबन को स्वीकार करती है। अंसल की नायेकाएँ अपने परिस्थितियों के अनुसार स्वयं निर्णय लेती है। समाज की बुराइयों से बचने के लिए वे अविवाहित रहना पसन्द करती है। मुक्ता और साधवी इसके अच्छे उदाहरण हो सकते हैं।

संक्षेप में कुसुम अन्सल ने महानगरीय जनजीवन के विविध आयामों को अपने आलोच्य उपन्यासों में प्रस्तुत करके महानगरीय शिक्षित नारियों की स्थिति एवं गति से हमें अवगत कराया है। उन्होंने दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई, गोरखपुर, कानपुर आदि महानगरों के समाज जीवन से हमें परिचित कराकर महानगरीय जनजीवन के परिप्रेक्ष्य में नारी मनोविज्ञान की तड़फन को वाणी देने का काम किया है। आज के महानगरों की भीड़ में नारी की क्या स्थिति है, इसे स्पष्ट रूप में पाठकों के सामने रखने का कुसुमजी का उद्देश्य यहाँ स्पष्ट होता है और लेखिका ने -

"अबला जीवन हाय तुम्हारी यहीं कहानी
अंचल में दूध और आँखों में पानी ।"

इस उक्ति पर सोचने को हमें बाध्य किया है।

संदर्भ

1· कुसुम अन्सल, "उसतक" पराग प्र·, दिल्ली, प्र·सं·1979, पृ·30

2· कुसुम अन्सल, "अपनी-अपनी यात्रा", सरस्वती प्र· दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ·11-12

3· वही, पृ·35

4· कुसुम अन्सल,"एक और पंचवटी" अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1985, पृ·13

5· वही, पृ·13

6· वही, पृ·13-14

7· वही, पृ·51

8· वही, पृ·52

9· वही, पृ·116

10· कुसुम अन्सल, "उस तक" पराग प्र·,दिल्ली, प्र·सं·1979, पृ·34

11· कुसुम अन्सल, "अपनी अपनी यात्रा", सरस्वती प्रकाशन,दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ·52

12· वही, पृ·56

13· वही, पृ·75

14· वही, पृ·89

15· कुसुम अन्सल, एक और पंचवटी, अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1985, पृ·42

16· वही, पृ·65

17· वही, पृ·87

18· कुसुम अन्सल, "उस तक", पराग प्र·दिल्ली, प्र·सं·1979, पृ·36

19· वही, पृ·36

20· वही, पृ·37

21· वही, पृ·84

22· कुसुम अन्सल, "एक और पंचवटी", अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1985, पृ·9

23· वही, पृ·10

24· वही, पृ·66

25· वही, पृ·78

26· वही, पृ·87

27· कुसुम अन्सल, "उस तक" पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1979, पृ·41

28· कुसुम अन्सल, "अपनी अपनी यात्रा" सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली प्र·सं·1981, पृ·67

29· वही, पृ·68

30· वही, पृ·68

31· कुसुम अन्सल, "उस तक", पराग प्रकाशन दिल्ली, प्र·सं·1979, पृ·34

32· वही, पृ·56

33· वही, पृ·61

34· कुसुम अन्सल, "अपनी-अपनी यात्रा", सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ·21

35· वही, पृ·89

36· कुसुम अन्सल, "एक और पंचवटी" अभिव्यंजना प्रकाशन दिल्ली, प्र·सं·1985, पृ·45

37· वही, पृ·104

38· वही, पृ·109

39· कुसुम अन्सल, "अपनी अपनी यात्रा", सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ·31

40· वही, पृ·36-37

41· वही, पृ·37

42· वही, पृ·39

43· वही, पृ·132

44· कुसुम अन्सल, "एक और पंचवटी" अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1985, पृ·13

45· वही, पृ·38

46· वही, पृ·110

47· कुसुम अन्सल, अपनी अपनी यात्रा, सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ·127

48· वही, पृ·139-140

49· डॉ·ज्ञानवती अरोड़ा, समसामायिक हिन्दी कहानी में बदलते पारिवारिक संबंध, सूर्य प्रकाशन दिल्ली, प्र·सं·1989, पृ·23

50· कुसुम अन्सल, "आधुनिक उपन्यासों में महानगर" अभिव्यंजना प्रकाशन दिल्ली, प्र·सं·1993, पृ·89

51· कुसुम अन्सल, "उस तक" पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1979, पृ·20

52· वही, पृ·20

53· वही, पृ·41

54· कुसुम अन्सल, अपनी अपनी यात्रा, सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ· 112

55· सुनंत कौर, समकालीन हिन्दी कहानी, स्त्री-पुरूष संबंध, अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1991, पृ·58

56· कुसुम अन्सल, "उस तक", पराग प्रकाशन दिल्ली, प्र·सं·1979, पृ·100

57· कुसुम अन्सल, "अपनी अपनी यात्रा" सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1981, पृ·22

58· वही, पृ·22

59· कुसुम अन्सल, "एक और पंचवटी", अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र·सं·1985, पृ·118

60· वही, पृ·119